ऋषि प्रसाद

वर्ष : ६ अंक : ३७ जनवरी १९९६ रूपये ८

झाँसी सत्संग समारोह में पूज्य बापू को शॉल भेंट कर अभिवादन एवं श्रद्धासुमन अर्पण करते उ.प्र. के महामहिम राज्यपाल श्री मोतीलालजी वोरा।

मुम्बई में महाराष्ट्र सरकार की ओर से पूज्य बापू का स्वागत करते हुए उपमुख्यमंत्री श्री गोपीनाथ मुंडे।

अंधेरी (वेस्ट), मुम्बई में आयोजित दिव्य सत्संग समारोह में पूज्य बापू के वचनामृतों का रसपान कर पभुभक्ति में निमग्न फिल्म अभिनेता शत्रुघ्न सिन्हा, उनकी धर्मपत्नी पूनम सिन्हा एवं पुत्र लव, कुश।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ६
अंक : ३७
९ जनवरी १९९६
सम्पादक : के. आर. पटेल
मूल्य : रू. ८-००

सदस्यता शुल्क
भारत, नेपाल व भूटान में
वार्षिक : द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. 30/-
मासिक संस्करण हेतु : रू. 50/-
आजीवन : द्विमासिक संस्करण हेतु : रू. 300/-
मासिक संस्करण हेतु : रू. 500/-
विदेशों में
वार्षिक : द्विमासिक संस्करण हेतु : US $ 18
मासिक संस्करण हेतु : US $ 30
आजीवन : द्विमासिक संस्करण हेतु : US $ 180
मासिक संस्करण हेतु : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : के. आर. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा,
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५ ने
संप कोर्पोरेशन, बारडोलपुरा एवं भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप,
अहमदाबाद में छपाकर प्रकाशित किया ।

प्रस्तुत है...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें ।

फिर कब आओगे ?

शब्द बह रहे आँसू बनकर ।
किन शब्दों में कहूँ न जाओ ॥
एक बार हरि ओम ओम हरि ।
निज श्रीमुख से फिर कह जाओ ॥
कलियाँ बात विदा की सुनकर ।
खिलने से पहले मुरझायीं ॥
कदम तुम्हारे जाते देखे ।
यमुना की आँखें भर आयीं ॥
मनकामेश्वर मन्दिर कहता ।
फिर कब आओगे बतलावो ।
एक बार...

फिर जाने कब हम सुन पायें ।
मधुर तुम्हारी पावन वाणी ॥
वाणी जो बन गयी आज है ।
विश्व जनों हित जन कल्याणी ॥
जाना सही तुम्हारा है पर ।
कैसे मन माने समझाओ ॥
एक बार...

इतनी की बरसात वचन की ।
मन की धरती फिर भी प्यासी ॥
मोह हमारा क्यों व्यापेगा ।
तुमको तुम तो हो संन्यासी ॥
किन शब्दों से तुम्हें विदा दें ।
'बापू' हमें तुम्हीं बतलाओ ॥
एक बार...

- सुशील 'सरित'

आत्मा का साक्षात्कार हुआ जब...

आत्मा का साक्षात्कार हुआ जब, परम सुफल ये पाया ।
हुआ ब्रह्म का रूप स्वयं मन, ब्रह्म स्वरूपी काया ॥
हरि ओम्... हरि ओम्... गुरु ओम्... गुरु ओम्...

आसो शुक्ल दूज के दिन, मध्यान्ह समय था ढाई ।
हुई आसुमल को जब, जीवन भर की नेक कमाई ॥
नाच उठा था धरती अम्बर...२, ज्योति बनी जब छाया ।
हुआ ब्रह्म का रूप स्वयं मन, ब्रह्म स्वरूपी काया ॥
हरि ओम्... हरि ओम्... गुरु ओम्... गुरु ओम्...
आत्मा का...

बाँट रहे अध्यात्म प्रसादी, लीलाशाह से पाई ।
अविनाशी हो गयी आत्मा, शक्ति अनन्त समाई ॥
करुणाधर ने करुणा करके...२, वात्सल्य बरसाया ।
हुआ ब्रह्म का रूप स्वयं मन, ब्रह्म स्वरूपी काया ॥
हरि ओम्... हरि ओम्... गुरु ओम्... गुरु ओम्...
आत्मा का...

लीलाशाह भगवान ये बोले, करो दक्षिणा अर्पित ।
आसूमल ! जो मैं माँगूँ वह, गुरु को करो समर्पित ॥
'एक सौ आठ को आत्मा का...२, साक्षात्कार मन भाया ।
हुआ ब्रह्म का रूप स्वयं मन, ब्रह्म स्वरूपी काया ॥
हरि ओम्... हरि ओम्... गुरु ओम्... गुरु ओम्...
आत्मा का...

सद्गुरु रूप ईश का है, परब्रह्म रूप है भाई ।
बिना मोल ही प्रेम लुट रहा, लुटा रहे है साईं ॥
करो स्नेह गुरु को अर्पण...२, मोक्ष द्वार घर आया ।
होगा ब्रह्म का रूप स्वयं मन, ब्रह्म स्वरूपी काया ॥
हरि ओम्... हरि ओम्... गुरु ओम्... गुरु ओम्...
आत्मा का...

- सुशील 'सरित'
2/220, नामनेर, आगरा-२८२००१

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं :

गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई ॥

चाहे सृष्टि बनाने का सामर्थ्य आ जाये चाहे प्रलय करने का सामर्थ्य आ जाये, फिर भी सद्गुरु की कृपा के बिना देह की परिच्छिन्नता नहीं मिटती है और जब तक अंतःकरण अपरिच्छिन्न चैतन्य के साथ, व्यापक चैतन्य के साथ अभिन्नता का अनुभव नहीं करता तब तक समझो, कार्य अधूरा है। यह कार्य तभी पूरा हो सकता है जब सद्गुरु मिल जायें ।

चाहे सृष्टि बनाने का सामर्थ्य आ जाये चाहे प्रलय करने का सामर्थ्य आ जाये, फिर भी सद्गुरु की कृपा के बिना देह की परिच्छिन्नता नहीं मिटती ।

गुरु तो करना चाहिए लेकिन गुरु करने में खूब सावधानी भी बरतनी चाहिए । जैसे-वैसे पुरोहित को गुरु बना लिया और उसके कहे अनुसार साधना करते रहे, श्रद्धा पूरी टिकी न टिकी और मनमाना करते रहे तो वर्षों बीत जायेंगे और हाथ में कुछ आयेगा नहीं । बाद में लगेगा कि भगवान-वगवान कुछ नहीं है । इस प्रकार तो जीव **अतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः** हो जायेगा । इसलिए गुरु करने का यह काम बहुत सावधानी और समझदारी का है ।

आज कल रसोइये को भी महाराज बोलते हैं और भीखमँगे को भी महाराज बोलते हैं । पोथी पढ़नेवाले को भी ज्ञानीजी बोलते हैं । किन्तु ज्ञानीजी होना एक बात है और ब्रह्मज्ञानी होना बिल्कुल अलग बात है ।

वर्तमान युग में ऐसे गुरुओं का मिलना तो बहुत सुगम है, जहाँ-वहाँ मिल जायेंगे । किन्तु सद्गुरु का मिलना अत्यंत कठिन है । सामान्य गुरु, प्रवचन करनेवाले गुरु तो बहुत मिल जायेंगे क्योंकि कई लोगों को गुरु बनने का शौक हो गया है । दूसरों को सीख देने की, ज्ञान देने की तो मानो फैशन हो गयी है । लेकिन गुरु बनना बड़ी जिम्मेदारी का कार्य है, यह वे लोग नहीं समझते ।

स्वामी विवेकानंद कहते थे कि : ''गुरु बनना अर्थात् हजार मुद्राएँ प्रति व्यक्ति दान करना । अतः यह दरिद्र व्यक्ति का काम नहीं है । कोई करोड़पति हो तभी हज़ार मुद्राएँ प्रति व्यक्ति को दे सकता है । किन्तु आजकल तो *हर कंगाल हजार मुद्राएँ दान करने की गादी पर बैठ* जाता है ।''

विवेकानंदजी की तरह कबीरजी ने भी आजकल के तथाकथित गुरुओं के लिए कटाक्ष किया है :

गुरु लोभी शिष्य लालची दोनों खेले दाँव ।
दोनों डूबे बावरे चढ़ी पत्थर की नाव ॥

गुरु को भी आध्यात्मिक अनुभव होना चाहिए, शिष्य की शंकाओं के निवारण करने का सामर्थ्य होना चाहिए और शिष्य में भी ज्ञान पाने की तत्परता और उत्साह होना चाहिए ।

एक कहानी है :

लालबुझक्कड़ भी गुरु थे । गाँव के बाहर छोटी-मोटी कुटिया बनाकर रहते थे । गाँव के पास ही एक जंगल था । एक रात्रि को थोड़ी बारिश हुई और एक हाथी जंगल में से आकर गाँव का चक्कर लगाकर चला गया । सुबह गाँववालों ने हाथी के पैर के निशान देखे किसीने हाथी को कभी देखा नहीं था इसलिए चर्चा करने लगे कि 'यह किसका पैर है ?'

आखिरकार कोई निर्णय न होने पर सोचा कि 'चलो, गुरु महाराज से पूछें ।'

गाँववाले गये गुरु लालबुझक्कड़ के पास और बोले : "गुरु महाराज ! आप गाँव में आकर देखिये कि ये पैर किसके हैं ?"

गुरु ने गाँव जाकर देखा कि पैर के निशान तो बहुत बड़े हैं । पहले गुरु महाराज जोर से हँसे और फिर रोये ।

लोगों को आश्चर्य हुआ । गुरु से पूछा : "आप पहले हँसे फिर रोये क्यों ?"

गुरु महाराज : "मैं हँसा इसलिए कि आखिर में गुरु की जरूरत तो पड़ती ही है और रोया इसलिए कि मैं न होता तो तुम्हारा क्या होता ? अरे ! तुम लोग एक छोटी-सी बात भी नहीं समझ सकते ?

जो बूझे लालबुझक्कड़ और न बूझे कोय ।
पैर में चक्की बाँध के कोई हिरणा आया होय ॥

अब हाथी तो किसीने देखा नहीं था, न ही गुरु ने न ही चेलों ने । हिरण तो सबने देखा था अत: गुरु ने कह दिया कि पैर में चक्की बाँधकर कोई हिरण आया होगा ।

जैसे लालबुझक्कड़ एवं गाँववालों ने हाथी नहीं देखा था ऐसे ही परमात्मा का अनुभव न करनेवाले लालबुझक्कड़ जैसे लोग अपना अज्ञान छांटते रहते हैं ।

अपनी ओर से देखा जाये तो लालबुझक्कड़ बड़ा ज्ञान छाँट रहा था किन्तु उसके ज्ञान का विचार आप लोग करें तो क्या कहेंगे ?... आज कल ऐसे लोग कई बार मिल जाते हैं ।

एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आया और बोला : "बापू ! मैंने बारह साल से मंत्रदीक्षा ली है, गुरु बनाये हैं लेकिन आज तक कोई अनुभव नहीं हो रहा है ।"

मैंने पूछा : "किसको गुरु बनाया है ?"

वह बोला : "दिल्ली दरवाजे में कोई ज्ञानीजी करके हैं, पाठ करते हैं, उन्हें गुरु बनाया था ।"

मैंने कहा : "आज कल रसोइये को भी महाराज बोलते हैं और भीखमँगे को भी महाराज बोलते हैं । पोथी पढ़नेवाले को भी ज्ञानीजी बोलते हैं । ज्ञानीजी होना एक बात है और ब्रह्मज्ञानी होना बिल्कुल अलग बात है । अच्छा ! तुम्हारा मंत्र कौन-सा है ?"

वैसे तो अपना गुरुमंत्र किसीको भी नहीं बताना चाहिए लेकिन यदि कोई सद्गुरु मिलते हैं तो उनके समक्ष अपना गुरुमंत्र बताया जा सकता है । उस व्यक्ति ने अपना मंत्र मुझे बताया ।

उसका गुरुमंत्र इतना लंबा था कि एक मंत्र बोलने में ही काफी समय लगे तब पूरा हो । मैंने कहा : "यह कोई गुरुमंत्र नहीं है वरन् तुम्हें कोई पाठ बता दिया है ।"

ऐसे गुरु कई मिल जाते हैं । हमारे गुरुदेव प. पू. लीलाशाहजी महाराज विनोद में कहते थे : **कन्या-मन्या कुर्रrrर... तुम हमारे चेले... हम तुम्हारे गुर्रrrर... दक्षिणा धर्रrrर... तू चाहे तर्रrrर चाहे मर्रrrर... ।**

दक्षिणा के लोभ से गुरु बननेवाले तो बहुत हैं । पगारदार गुरु भी बहुत मिल जाते हैं जो विदेशों से आकर धर्म-प्रचार करते हैं । पगारदार शिक्षक हो सकता

> *जिन महापुरुष ने भिन्न-भिन्न रास्तों से यात्रा करके मंजिल तय की है, यात्रा के शिखर तक, आत्म-साक्षात्कार की अवस्था तक पहुँचे हैं ऐसे महापुरुषों के द्वारा जब दीक्षा मिल जाती है तभी मनुष्य का आध्यात्मिक कल्याण हो सकता है ।*

> *दीक्षा के बाद ही साधक को द्विज कहा जाता है । प्रथम जन्म होता है माता-पिता के संयोग से, रज-वीर्य से, उसे बिंदु संतति कहते हैं । किन्तु जब गुरु से दीक्षा प्राप्त होती है तब दुबारा जन्म होता है, जिसे नाद संतति कहते हैं ।*

है, व्याख्याता हो सकता है किन्तु गुरु पगारदार नहीं हो सकता । पगारदार व्यक्ति कभी सद्गुरु नहीं हो सकता ।

सद्गुरु तो उन्हें कहा जाता है जिनमें ऋद्धि-सिद्धि के प्रलोभनों को ठुकराने का सामर्थ्य हो । यहाँ तक कि शास्त्रविरुद्ध बात अगर भगवान भी करें तो उनकी बात को भी ठुकराने का सामर्थ्य हो । स्वर्ग के सुख को, ब्रह्मलोक के सुख को, वैकुंठ के सुख को एवं वैकुंठाधिपति के प्रलोभनों को भी ठुकराने का जिनमें सामर्थ्य हो, उन्हें सद्गुरु कहा जाता है । ऐसे सद्गुरु से ही वास्तविक ज्ञान की, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो सकती है । ऐसे सद्गुरु द्वारा बताये गये साधनापथ पर चलकर ही साधक अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है । अत: ऐसे ब्रह्मज्ञानी सद्गुरुओं से ही दीक्षा लेना चाहिए ।

साधक गुरुप्रदत्त मंत्र दस साल तक करता है और बाद में सद्गुरु व साधन पर से उसकी श्रद्धा उठ जाती है तो वह वहीं पहुँच जाता है, जहाँ से उसने साधना शुरू की थी । अत: गुरुमंत्र को पूर्ण विश्वास के साथ जपना चाहिए ।

दीक्षा देना किसी साधारण पुरोहित या साधारण गुरु का काम नहीं है । जिन महापुरुष ने भिन्न-भिन्न रास्तों से यात्रा करके मंजिल तय की है अथवा यात्रा के शिखर तक, आत्मसाक्षात्कार की अवस्था तक पहुँचे हैं ऐसे महापुरुषों के द्वारा जब दीक्षा मिल जाती है तभी मनुष्य का आध्यात्मिक कल्याण हो सकता है ।

सद्गुरु वही मंत्र देंगे जिसके द्वारा साधक का कल्याण शीघ्रता से हो । साधक का मन, प्राण जिस कैन्द्र में रहता है उसी केन्द्र से उसकी यात्रा शुरू हो ऐसा ही मंत्र एवं साधना की विधि होनी चाहिए ।

हमारे अज्ञान, पाप और ताप को नष्ट करने का सामर्थ्य महापुरुष में हो और हम आकाश जैसी विशालता, सागर जैसी गंभीरता एवं वज्र जैसी दृढ़ता से महापुरुष की कृपा को अपने में संभाल रखने की क्षमता रखें उसी समय दीक्षा का पूर्ण फल परमात्मप्रसाद हृदय में प्रकट हो जाता है । गुरु का आत्मानुभव एवं कृपा देने का सामर्थ्य **'दी'** एवं शिष्य की पचाने की क्षमता **'क्षा'** इन दोनों के योग को **'दीक्षा'** कहते हैं । अर्थात् गुरु की करुणा, कृपा, अनुभवसंपन्न आध्यात्मिक प्रसाद देने की चेष्टा और शिष्य की उसे पचाने की क्षमता एवं श्रद्धा, इन दो बातों के मेल को कहते हैं दीक्षा ।

दीक्षा लेना भी कोई साधारण बात नहीं है । दीक्षा के बाद ही साधक को द्विज (अर्थात् दुबारा जन्म लेनेवाला) कहा जाता है । प्रथम जन्म होता है माता-पिता के संयोग से, रज-वीर्य से, उसे बिंदु संतति कहते हैं । जब गुरु से दीक्षा प्राप्त होती है तब दुबारा जन्म होता है, जिसे नाद संतति कहते हैं । माता-पिता के रज-वीर्य से हमारे शरीर का जन्म होता है और गुरुकृपा से हमारा साधक के रूप में जन्म होता है ।

दीक्षा का मतलब है गुरु में ज्ञान, पुण्य, उत्साह एवं साधना की अनुभूतियाँ देने का सामर्थ्य हो और शिष्य में उसे पचाने की श्रद्धा एवं तत्परता हो । गुरु की करुणा-कृपा एवं शिष्य की श्रद्धा के मेल को ही दीक्षा बोलते हैं ।

दीक्षा तीन प्रकार की होती है : (१) मांत्री दीक्षा (२) शाम्भवी दीक्षा (३) स्पर्श दीक्षा ।

मंत्र तो कई प्रकार के होते हैं किन्तु मंत्र वैदिक होना चाहिए । मंत्र हमारे अधिकार का होना चाहिए । जैसे केमिस्ट की दुकान पर अच्छी से अच्छी एवं महँगी से महँगी कई दवाइयाँ होती हैं किन्तु ये दवाइयाँ खाने से रोगी ठीक नहीं होगा । रोग के अनुकूल दवाई खाने पर ही मरीज ठीक हो सकता है । अत: मरीज एवं केमिस्ट के बीच डॉक्टर की जरूरत पड़ती है । कभी किसी मंत्र की महिमा सुनी तो कभी किसी मंत्र की और उसका जप करने लगे तो उतना

फायदा नहीं होता जितना सद्‌गुरु से प्राप्त मंत्र से होता है । सद्‌गुरु भी साधक की योग्यता के अनुसार ही उसे मंत्र प्रदान करते हैं । सबको एक ही प्रकार का मंत्र देना सद्‌गुरुओं को पसंद नहीं होता ।

इन गुरुओं में भी दो प्रकार होते हैं : एक वे गुरु होते हैं जिनको परंपरा के अनुसार गुरुगादी मिल जाती है । ऐसे गुरुओं का कर्त्तव्य हो जाता है गुरुगादी की परंपरा का विस्तार करना । इसलिए ऐसे गुरु सबको एक ही प्रकार का मंत्र देते हैं ।

''परीक्षित ! अब उठो । तुम्हें यहाँ बैठे-बैठे पाँच दिन हो गये हैं । अब उठकर कुछ खाओ-पियो । भूख लगी होगी ।''

दूसरे होते हैं सद्‌गुरु । गादी रहे या न रहे किन्तु शिष्य की उन्नति जिनको सर्वोपरि लगती है ऐसे सद्‌गुरु सबको एक ही प्रकार का मंत्र नहीं देते क्योंकि एक ही प्रकार का मंत्र देने का अर्थ तो यही हुआ कि बालमंदिरवाले, पाँचवीं कक्षावाले, ग्यारहवीं कक्षावाले, बी.ए.वाले, एम.ए. वाले, पीएच.डी. वाले सभी को एक ही कक्षा में पढ़ाया जाये । जो ११ वीं के अधिकारी हैं उन्हें ११ वीं पढ़ायी जाये तो उन्हें तो लाभ होगा लेकिन औरों के साथ अन्याय होगा । यही हाल है एक ही प्रकार के मंत्र की दीक्षा में । अतः प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार जो मंत्र देते हैं उन्हें सद्‌गुरु कहते हैं, लोकसंत कहते हैं । नारदजी ऐसे ही लोकसंत हैं तभी उन्होंने वालिया लुटेरे को 'मरा...मरा...' मंत्र दिया क्योंकि वह अत्यंत नीचे के केन्द्रों में जी रहा था ।

परीक्षित एक सदाचारी एवं कृष्णभक्त राजा थे । उन्हें मृत्यु सामने दिख रही थी एवं संसार के प्रति कोई आसक्ति नहीं रह गई थी । मृत्यु से पहले अमरत्व का अनुभव करने की तत्परता उनमें थी । अतः सातवें दिन शुकदेवजी महाराज ने परीक्षित के सिर पर हाथ रख दिया, स्पर्श दीक्षा दे दी, वह अनुभव करा दिया जिसके बाद जन्म-मरण का चक्र सदा के लिए समाप्त हो जाता है ।

सद्‌गुरु वही मंत्र देंगे जिसके द्वारा साधक का कल्याण शीघ्रता से हो । आदमी जहाँ होता है वहीं से उसकी यात्रा शुरू होती है । अहमदाबादवाला व्यक्ति सूरत से यात्रा शुरू नहीं कर सकता । उसकी यात्रा अहमदाबाद से ही शुरू होगी । ऐसे ही साधक का मन, प्राण जिस केन्द्र में रहता है उसी केन्द्र से उसकी यात्रा शुरू हो ऐसा ही मंत्र एवं साधना की विधि होनी चाहिए । ध्रुव को नारदजी ने **'मरा-मरा'** मंत्र न देकर **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** मंत्र दिया क्योंकि ध्रुव की स्थिति अलग थी । ऐसे ही नारदजी ने राजाओं को उनके अनुरूप ही मंत्र दिये । राजा हैं, रजोगुणप्रधान हैं, उनके पास सामर्थ्य और सत्ता है अतः उन्हें देवी का मंत्र दिया ताकि राजाओं में मातृभाव का विकास हो और वे प्रजा का पालन ठीक ढंग से कर सकें ।

उन्हीं देवर्षि नारदजी ने कंस को कह दिया कि : ''देवकी के आठवें बालक द्वारा तेरी मृत्यु निश्चित हुई है । इसलिए तुम सावधान रहना ।'' नारदजी ने कंस को भड़का दिया ताकि कंस के पापों का घड़ा शीघ्र भर जाये और ऐसे पापी का फैंसला तो शीघ्र ही हो जाना चाहिए ।

ये होते हैं लोकसंत जो शिष्य को उसकी योग्यता के अनुसार मंत्र देते हैं ताकि शिष्य का शीघ्र कल्याण हो । शिष्य जिस अवस्था में हो उसी अवस्था से आगे की यात्रा सुगमतापूर्वक कर सके । इसे कहते हैं मांत्री दीक्षा ।

कुछ ऐसे महापुरुष होते हैं जो दीक्षा देते समय अपनी निगाहों से शुभ संकल्प साधक में डाल देते हैं । जैसे किसान खेत में गेहूँ फेंकता है तो गेहूँ ही उगते हैं और धान फेंकता है तो समय पाकर धान उगता है । ऐसे ही

सद्गुरु अपनी निगाहों के द्वारा शिष्य को संप्रेक्षण शक्ति का दान कर देते हैं । शुकदेवजी महाराज में यह सामर्थ्य था । श्रीमद्भागवत की कथा सुनाते-सुनाते पाँचवें दिन परीक्षित में श्री शुकदेवजी महाराज ने निगाहों के द्वारा अपना संकल्प बरसा दिया ।

'हरि बोल... हरि बोल...' तो कई लोग करते थे किन्तु गौरांग जब **'हरि बोल... हरि बोल...'** करवाते-करवाते अपनी निगाहों के द्वारा संप्रेक्षण शक्ति बरसा देते थे तो लोग झूमने लग जाते थे । इसको बोलते हैं शाम्भवी दीक्षा ।

इसमें बाहर से कुछ लेना-देना या आदान-प्रदान नहीं होता । केवल निगाहों के द्वारा गुरुकृपा शिष्य में संचारित हो जाती है । जैसे पॉवरहाऊस से विद्युत ताँबे, एल्युमिनियम आदि के द्वारा संचारित होती है किन्तु उस विद्युत को आप आँखों द्वारा नहीं देख सकते । आपके घर के साधनों-बल्ब, फ्रीज आदि के चलने पर पता चलता है कि विद्युत है । ऐसे ही शाम्भवी दीक्षा इन आँखों से नहीं दिखती किन्तु साधक के हृदयपरिवर्तन से एवं उसके शरीर के हाव-भावों से पता चल जाता है कि वह गुरुकृपा को कितना पचा पाया है ।

श्री शुकदेवजी महाराज ने भी निगाहों से अपनी कृपा बरसाते हुए परीक्षित से कहा : ''परीक्षित ! अब उठो । तुम्हें यहाँ बैठे-बैठे पाँच दिन हो गये हैं । अब उठकर कुछ खाओ-पियो । भूख लगी होगी ।''

''मुझे जो मिला है वह वाणी में नहीं आ सकता । जो अधिकारी होगा वह यदि श्रद्धा-भाव से मेरे समक्ष चुपचाप आकर बैठेगा तब भी समझ जायेगा । उसे उपदेश की जरूरत नहीं है और जो अनधिकारी होगा वह मेरे उपदेश का अनादर करेगा ।''

जो लोग अपने मन से ही किसी मंत्र को जपने लगते हैं, भक्ति करते हैं, तीर्थयात्राएँ भी करते हैं, उनकी अपेक्षा दीक्षित साधक ऊँचा होता है । जो अनुभव गुरु की आज्ञानुसार चलनेवाले दीक्षित साधक को पाँच-दस दिन में हो जाता है उससे तो वे बेचारे तीर्थयात्रादि करनेवाले पाँच-दस वर्ष तीर्थयात्रादि करके भी वंचित् ही रह जाते हैं ।

परीक्षित : ''आपके दर्शन एवं आपकी वाणी के श्रवण के प्रभाव से मेरी क्षुधा-तृषा शान्त हो गई है । गुरुदेव ! जिस भूख-प्यास ने ऋषि का अपमान करवा दिया, जिस भूख-प्यास ने ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डलवा दिया, वह भूख-प्यास अब न जाने कहाँ चली गयी है !''

शुकदेवजी महाराज यह सुनकर प्रसन्न हुए कि परीक्षित को शाम्भवी दीक्षा पची है । उसे आनंद और शांति मिल रही है । फिर सातवें दिन शुकदेवजी महाराज ने परीक्षित को स्पर्श-दीक्षा दी ।

परीक्षित एक सदाचारी एवं कृष्णभक्त राजा थे । उन्हें मृत्यु सामने दिख रही थी एवं संसार के प्रति कोई आसक्ति नहीं रह गई थी । मृत्यु से पहले अमरत्व का अनुभव करने की तत्परता उनमें थी । अतः सातवें दिन शुकदेवजी महाराज ने परीक्षित के सिर पर हाथ रख दिया, स्पर्श दीक्षा दे दी, वह अनुभव करा दिया जिसके बाद जन्म-मरण का चक्र सदा के लिए समाप्त हो जाता है । शुकदेवजी महाराज बोले :

अहं ब्रह्म परं धाम
ब्रह्माहं परमं पदम् ।
एवं समीक्षन्नात्मानं
आत्मन्याधाय निष्कले ॥

''तुम इस प्रकार चिन्तन करो कि 'मैं ही सर्वाधिष्ठानरूप परब्रह्म हूँ । सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ ।' इस प्रकार तुम अपने-आपको अपने वास्तविक एकरस, अनन्त, अखण्ड स्वरूप में स्थित कर लो । हे परीक्षित ! यह देह तुम नहीं हो । तक्षक का एवं

तुम्हारा शरीर भिन्न-भिन्न दिखता है किन्तु दोनों में स्थित वह ब्रह्मतत्त्व एक का एक है । श्रीकृष्ण और तुम दोनों एक ही हो अत: उस ब्रह्म-परमात्मा को जानकर तुम ब्रह्ममय हो जाओ ।''

परीक्षित की भ्राँति दूर हो गई । वे अपने को देह से पृथक् शुद्ध आत्मस्वरूप में जानने लगे । उनका हृदय भर आया एवं बड़े प्रेम से उन्होंने शुकदेवजी महाराज का अर्घ्य-पाद्य से पूजन किया । शुकदेवजी महाराज उन पर कृपा बरसाकर चल दिये ।

नियत समय पर तक्षक आया किन्तु परीक्षित अब यह नहीं सोचते कि 'हाय रे ! मैं मर गया ।' वे तो सोचते हैं कि : 'यह मेरी मृत्यु नहीं, शरीर की मृत्यु हो रही है । मुझे मार सकें ऐसी कोई परिस्थिति या वस्तु विश्व भर में नहीं है । मैं तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानंद स्वरूप हूँ । ॐ...ॐ...ॐ... ।'

मौत के समय भी मौत के साक्षी होकर परीक्षित अपने स्व-स्वरूप में स्थित हो गये । यह कार्य किसी धनवान, पंडित या सत्ताधीश का नहीं है । जहाँ मृत्यु भी न पहुँच सके उस अमर पद में पहुँचा देना, यह कार्य तो सद्गुरु की कृपा से ही सम्पन्न होता है ।

समर्थ रामदास ने कहा है :

महाराजे चक्रवर्ती झाले आहेत पुढि होती ।
परन्तु कोणी सायुज्य मुक्ति देणार नाहीं ॥

सैकड़ों चक्रवर्ती हुए और भविष्य में भी होंगे परन्तु सायुज्य मुक्ति देनेवाले संत विरले ही मिलेंगे ।

आत्म-साक्षात्कार करके निजानंद की मस्ती में तो कई संत रह लेते हैं किन्तु मानवमात्र के लिए अपने जीवन को खर्च कर देनेवाले, जीव को उसके शिवस्वरूप का ज्ञान करानेवाले सद्गुरु तो विरले ही होते हैं ।

राज्य तो भोग की वासना जगायेगा जबकि दीक्षा योग की भावना जगायेगी । राज्य-सुख तो पुण्यों को क्षीण करेगा जबकि दीक्षा पापों को क्षीण करेगी । राज्य-वैभव को पाकर तो राग-द्वेष, इर्ष्या आदि बढ़ता है जबकि दीक्षा से यह सब घटता है ।

भगवान बुद्ध को जब आत्म-साक्षात्कार हुआ तब वे मौन हो गये, यह सोचकर कि 'अब क्या बोलना ? जो सत्य है वह सत्य है । सत्य को वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है और यदि बोलना ही पड़ा तो माया का सहारा लेना पड़ेगा । माया को तो मैंने छोड़ दिया है । माया का सहारा लेकर अब क्या बोलना ?'

कहानी कहती है कि बुद्ध का मौन देखकर देवता लोग उनके पास गये और बोले : ''भन्ते ! आपको जो कुछ मिला है उसे अब संसार के कल्याण के लिए बाँटना शुरू कीजिए ।''

बुद्ध : ''मुझे जो मिला है वह वाणी में नहीं आ सकता । जो अधिकारी होगा वह यदि श्रद्धा-भाव से मेरे समक्ष चुपचाप आकर बैठेगा तब भी समझ जायेगा । उसे उपदेश की जरूरत नहीं है और जो अनधिकारी होगा वह मेरे उपदेश का अनादर करेगा ।''

गुरु के पास अवश्य जाते रहें । और समय न भी जा सकें तो गुरुपूनम पर तो अवश्य जाना ही चाहिए । वर्षों तक व्रत-उपवास करने से भी जो लाभ नहीं होता है वह लाभ सद्गुरु के कुछ समय के संग से स्वत: ही हो जाता है ।

देवता लोग निरूत्तर हो गये । किन्तु थोड़ी देर के बाद उन्होंने एक युक्ति खोज ली । वे बोले : ''यह बात सच है कि अधिकारीजन आपके समक्ष बैठने मात्रसे उन्नत होने लगेंगे एवं अनधिकारी आदर नहीं कर पाएँगे । लेकिन कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अनधिकारी भी नहीं हैं एवं पूरे अधिकारी भी नहीं हैं । जो एकदम गिरे हुए भी नहीं हैं एवं एकदम ऊँचे उठे हुए भी नहीं हैं । ऐसे लोगों के लिए बोलने की कृपा कीजिए । ऐसे लोग आपके मौन को झेल भी नहीं

सकते एवं आपके बोलने पर वैसे के वैसे रह भी नहीं सकते। ऐसे मध्यमवर्गियों की संख्या हर क्षेत्र में बहुत है भन्ते ! ऐसे लोगों के लिए तो बोलने की कृपा करें !''

भगवान बुद्ध इस बात से राजी हो गये तो जीवनभर बोलते रहे... अंतिम श्वास तक बोलते रहे। मेरे गुरुदेव प. पू. लीलाशाहजी महाराज भी करुणावश अंतिम श्वास तक बोलते रहे। यही तो सद्गुरुओं की करुणा है, कृपा है। उनकी उदारता है। ऐसे सद्गुरु से दीक्षा पाकर साधक कृतार्थ हो जाता है।

गुरुभक्ति ही समस्त विघ्नों को, समस्त विकारों को एक साथ नष्ट करने का सलामत उपाय है। समस्त विकारों के नष्ट होने पर परम शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मा का स्वतः प्राकट्य हो जाता है।

जो लोग अपने मन से ही किसी मंत्र को जपने लगते हैं, भगवान की भक्ति भी करते हैं, तीर्थयात्राएँ भी करते हैं, देवी-देवताओं को पूजते हैं उनको तो धन्यवाद है। किन्तु उनकी अपेक्षा दीक्षित साधक ऊँचा होता है। जो अनुभव गुरु की आज्ञानुसार चलनेवाले दीक्षित साधक को पाँच-दस दिन में हो जाता है उससे तो वे बेचारे तीर्थयात्रादि करनेवाले पाँच-दस तीर्थयात्रादि करने के बाद भी वंचित् ही रह जाते हैं। इसलिए यदि बड़े से बड़ा कार्य माना जाये, बड़े से बड़ी उपलब्धि मानी जाये तो वह है सद्गुरु से दीक्षा की प्राप्ति और बड़े से बड़ा दिन माना जाये तो वह है दीक्षा का दिन।

'यह मेरी मृत्यु नहीं, शरीर की मृत्यु हो रही है। मुझे मार सके ऐसी कोई परिस्थिति या वस्तु विश्व भर में नहीं है। मैं तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानंद स्वरूप हूँ।'

राज्य मिलना भी बड़ी उपलब्धि नहीं जितनी दीक्षा मिलना बड़ी उपलब्धि है। राज्य तो भोग की वासना जगायेगा जबकि दीक्षा योग की भावना जगायेगी। राज्य-सुख तो पुण्यों को क्षीण करेगा जबकि दीक्षा पापों को क्षीण करेगी। राज्य-वैभव को पाकर तो राग-द्वेष, इर्ष्या आदि बढ़ता है जबकि दीक्षा से यह सब घटता है। राज्य का सुख मिलने से कई दुःख भी साथ में आते हैं जबकि दीक्षा का सुख मिलने से कई दुःख अपने-आप भाग जाते हैं।

अपने मन से किसी मंत्र का जप करने से मंत्र में पूर्ण विश्वास नहीं आता। कुछ दिन बाद उस मंत्र को छोड़कर साधक दूसरा मंत्र करने लगता है। जबकि गुरुप्रदत्त मंत्र में विश्वास होता है। किन्तु एक बात है : यदि साधक गुरुप्रदत्त मंत्र दस साल तक करता है और सद्गुरु व साधना पर से उसकी श्रद्धा उठ जाती है तो वह वहीं पहुँच जाता है, जहाँ से उसने साधना शुरु की थी। अतः गुरुमंत्र को पूर्ण विश्वास के साथ जपना चाहिए।

किसी भी बीमारी का इलाज तभी संभव है जब डॉक्टर सही औषधि दे एवं मरीज कुपथ्य का त्याग करे। ऐसे ही सद्गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र हो एवं शिष्य में कुपथ्य (काम, क्रोधादि) का त्याग करने की तत्परता हो तभी उसका भवरोग मिट सकता है और वह पूर्ण हो जाता है। शिष्य को चाहिए कि वह अपने काम-क्रोधादि विकारों को मिटाने का प्रयास करे, अपने अहं को गुरुचरणों में मिटाने का प्रयास करे। जैसे बीज जितना मिटता है उतना ही वृक्ष होकर पनपता है। ऐसे ही जीव का क्षुद्र अहं जितना मिटता है उतना ही 'अहं ब्रह्मास्मि' का ज्ञानमय अनुभव प्रगट होने लगता है।

जैसे बीज को बो देने के बाद उसकी सिंचाई की जरूरत होती है ऐसे ही गुरुप्रदत्त मंत्ररूपी बीज को साधनारूपी सिंचाई द्वारा ही पल्लवित और पुष्पित किया जा सकता है। इसके लिए जरूरी है कि साधक मंत्रदीक्षा प्राप्त कर लेने के बाद उस मंत्र का जप नियमित रूप से करे, त्राटक करे अर्थात् गुरु की फोटो को,

मकर-संक्रान्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जनवरी माह की १२ से १४ तारीख के बीच मकर संक्रान्ति का पर्व आता है । इस समय सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है इसीलिए इसे मकर-संक्रान्ति कहते हैं । खगोलशास्त्रियों ने १४ जनवरी को मकर संक्रान्ति का दिवस तय कर लिया है । बाकी तो सूर्य का मकर राशि में प्रवेश कभी १२ से होता है, कभी १३ से तो कभी १४ तारीख से । ऐसा भी कहते हैं कि इस दिन से सूर्य का रथ उत्तर की ओर चलता है अत: इस पर्व को उत्तरायण कहते हैं ।

हमारे छ: महीने बीतते हैं तब देवताओं की एक रात होती हैं एवं छ: महीने का दिन । मकर संक्रान्ति के दिन देवता लोग भी जागते हैं । हम पर उन देवताओं की कृपा बरसे, इस भाव से भी यह पर्व मनाया जाता है । कहते हैं कि इस दिन यज्ञ में दिये गये द्रव्य को ग्रहण करने के लिए वसुंधरा पर देवता अवतरित होते हैं । इसी मार्ग से पुण्यात्मा पुरुष शरीर छोड़कर स्वर्गादिक लोकों में प्रवेश करते हैं । इसलिए यह आलोक का अवसर माना गया है । धर्मशास्त्रों के अनुसार इस दिन पुण्य, दान, जप तथा धार्मिक अनुष्ठानों का अत्यंत महत्त्व है । इस अवसर पर दिया हुआ दान पुनर्जन्म होने पर सौगुना होकर प्राप्त होता है ।

यह प्राकृतिक उत्सव है, प्रकृति से तालमेल करनेवाला उत्सव है । दक्षिण भारत में तमिल वर्ष की शुरूआत इसी दिन से होती है । वहाँ यह पर्व 'थई पोंगल' के नाम से जाना जाता है । सिंधी लोग इस पर्व को 'तिरमौरी' कहते हैं, हिन्दी लोग 'मकर संक्रान्ति' कहते हैं एवं गुजरात में यह पर्व 'उत्तरायण' के नाम से जाना जाता है ।

आज का दिवस विशेष पुण्य अर्जित करने का दिवस है । आज के दिन शिवजी ने अपने साधकों पर, ऋषियों पर विशेष कृपा की थी । आज के दिन भगवान शिव ने विष्णुजी को आत्मज्ञान का दान दिया था, ऐसा भी माना जाता है । तैत्तीरीय उपनिषद् में आता है : **एकं वा एतद् देवानाहंयत्संवत्सर:** । यह एक ही दिन है देवों का संवत्सर गिनने का । विक्रम संवत्सर के पूर्व इसी दिन से संवत्सर की शुरूआत मानी जाती थी, ऐसा भी वर्णन आता है ।

> *आज का दिवस विशेष पुण्य अर्जित करने का दिवस है । मकर संक्रान्ति के दिन किये गये सत्कर्म विशेष फल देते हैं ।*

मकर संक्रान्ति के दिन किये गये सत्कर्म विशेष फल देते हैं । आज के दिन भगवान शिव को तिल-चावल अर्पण करने का अथवा तिल-चावल का अर्घ्य देने का भी विधान है । इस पर्व पर तिल का विशेष महत्त्व माना गया है । तिल का उबटन, तिलमिश्रित जल से स्नान, तिलमिश्रित जल का पान, तिल-हवन, तिल-भोजन तथा तिल-दान सभी पापनाशक प्रयोग हैं । इसलिए इस दिन तिल, गुड़ तथा चीनी मिले लड्डू खाने तथा दान देने का अपार महत्त्व है । तिल के लड्डू खाने से मधुरता एवं स्निग्धता प्राप्त होती

> *मकर संक्रान्ति का आध्यात्मिक तात्पर्य है जीवन में सम्यक् क्रांति । अपने चित्त को विषय-विकारों से हटाकर निर्विकारी नारायण में लगाने का, सम्यक् क्रांति का संकल्प करने का यह दिन है ।*

है एवं शरीर पुष्ट होता है । शीतकाल में इसका सेवन लाभप्रद है । महाराष्ट्र में आज के दिन एक-दूसरे को तिल-गुड़ देकर, मधुरता का, सामर्थ्य का, आंतरिक परस्पर प्रेमवृद्धि का एवं आरोग्यता का संकल्प किया जाता है । परस्पर तिल-गुड़ का प्रदान करके वहाँ के लोग कहते हैं : ''तिळ गुड घ्या गोड गोड बोला ।''

यह तो हुआ लौकिक रूप से संक्रान्ति मनाना किन्तु मकर संक्रान्ति का आध्यात्मिक तात्पर्य है जीवन में सम्यक् क्रांति । अपने चित्त को विषय-विकारों से हटाकर निर्विकारी नारायण में लगाने का, सम्यक् क्रांति का संकल्प करने का यह दिन है । अपने जीवन को परमात्म-ध्यान, परमात्म-ज्ञान एवं परमात्म-प्राप्ति की ओर ले जाने का संकल्प करने का बढ़िया से बढ़िया जो दिन है वही संक्रान्ति का दिन है ।

अहंदान से बढकर तो कोई दान नहीं । अगर अपना-आपा ही संतों के चरणों में, सद्‌गुरु के चरणों में दान कर दिया जाये तो फिर चौरासी का चक्कर सदा के लिए मिट जाये ।

मानव सदा सुख का प्यासा रहा है । उसे सम्यक् सुख नहीं मिलता है तो अपने को असम्यक् सुख में खपा-खपाकर कई जन्मों तक जन्मता-मरता रहता है । अत: अपने जीवन में सम्यक् सुख पाने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए । वास्तविक सुख क्या है ? परमात्म-प्राप्ति । अत: उस परमात्म-प्राप्ति का सुख पाने के लिए कटिबद्ध होने का दिवस ही है संक्रान्ति । संक्रान्ति का पर्व हमें सिखाता है कि हमारे जीवन में भी सम्यक् क्रान्ति आ जाये । हमारा जीवन निर्भयता एवं प्रेम से परिपूर्ण हो जाये । तिल-गुड़ का आदान-प्रदान परस्पर प्रेमवृद्धि का ही तो द्योतक है !

संक्रान्ति के दिन दान का विशेष महत्त्व है । अत: जितना संभव हो सके उतना किसी गरीब को अन्न-दान करें । तिल के लड्डू भी दान किये जाते हैं । आज के दिन लोगों में सत्साहित्य के दान का भी सुअवसर प्राप्त किया जा सकता है । तुम यह सब न कर सको तो भी कोई हर्ज नहीं किन्तु हरिनाम का रस तो जरूर पिलाना । अच्छे में अच्छा तो परमात्मा है । उसका नाम लेते-लेते यदि अपने अहं को सद्‌गुरु के चरणों में, संतों के चरणों में अर्पित कर दो तो फायदा ही फायदा है । ...और अहंदान से बढ़कर तो कोई दान नहीं । अगर अपना-आपा ही संतों के चरणों में, सद्‌गुरु के चरणों में दान कर दिया जाये तो फिर चौरासी का चक्कर सदा के लिए मिट जाये ।

संक्रान्ति के दिन सूर्य का रथ उत्तर की ओर प्रयाण करता है । वैसे ही तुम भी इस मकर संक्रान्ति के पर्व पर संकल्प कर लो कि अब हम अपने जीवन को उत्तर की ओर अर्थात् उत्थान की ओर ले जायेंगे । अपने विचारों को उत्थान की तरफ मोड़ेंगे । यदि ऐसा कर सको तो आज का दिन तुम्हारे लिए परम मांगलिक दिन हो जायेगा । पहले के जमाने में लोग आज के दिन अपने तुच्छ जीवन को बदल कर महान् बनने का संकल्प करते थे ।

हे साधक ! तू भी आज संकल्प कर कि अपने जीवन में सम्यक् क्रांति - संक्रान्ति लाऊँगा । अपनी तुच्छ, गंदी आदतों को कुचल दूँगा और दिव्य जीवन बिताऊँगा । प्रतिदिन प्रार्थना करूँगा, जप-ध्यान करूँगा, स्वाध्याय करूँगा और अपने जीवन को महान् बनाकर ही रहूँगा । प्राणीमात्र के जो परम हितैषी हैं उन परमात्मा की लीला में प्रसन्न रहूँगा । चाहे मान हो चाहे अपमान, चाहे सुख मिले चाहे दु:ख, किन्तु सबके पीछे देनेवाले के करुणामय हाथों को ही देखूँगा । प्रत्येक परिस्थिति में सम रहकर अपने जीवन को तेजस्वी-ओजस्वी एवं दिव्य बनाने का प्रयास अवश्य करूँगा । हरि ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ...

जो शिष्य अपने गुरु के चरणकमलों में सम्पूर्ण आत्म-समर्पण करता है उसे गुरु स्वयं ही सब दैवी गुण प्रदान करते हैं ।

सद्गुरु पार उतारणहार

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते ।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशय: ॥

'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान) । अज्ञान को नष्ट करनेवाला जो ब्रह्मरूप प्रकाश है वह गुरु है इसमें कोई संशय नहीं है । (श्रीगुरुगीता : ३३)

विवेकानंद कहते थे :

''भगवान के रास्ते चलना, भक्त होना, यह आसान है । भक्त से भी जिज्ञासु होना आसान है । जिज्ञासु होकर आत्म-साक्षात्कार कर लेना, परमात्म-प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच जाना भी आसान है । किन्तु गुरु बनना बड़ा कठिन है । गुरुपद एक भयंकर अभिशाप है ।''

आत्म-साक्षात्कार की ऊँचे में ऊँची अनुभूति करने के बाद भी उससे नीचे आकर, एक-एक व्यक्ति के साथ माथा-पच्ची करके उसको उस ऊँची अनुभूति तक ले जाना यह कोई आसान कार्य नहीं है । पत्थर को भगवान बनाना आसान है क्योंकि पत्थर कभी शिल्पी का विरोध नहीं करता । लेकिन इस जीव को, दो हाथ-पैरवाले मनुष्य को शिव बनाना बड़ा कठिन है क्योंकि यह अज्ञानी जीव जरा-जरा बात पर विरोध करता है । ऐसा होते हुए भी ब्रह्मवेत्ता महापुरुष अपने-आपकी परवाह किये बिना 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' की भावना से अपना सारा जीवन प्रभुप्रसाद बाँटने में ही व्यतीत कर देते हैं ।

गुरु के बिना ज्ञान होना असंभव है ।

'श्रीरामचरितमानस' में आता है कि :

गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई ॥

'गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्माजी और शंकरजी के समान ही क्यों न हो ।'

(श्रीरामचरितमानस : उत्तरकाण्ड)

श्री रामकृष्णदेव को माँ काली के प्रत्यक्ष दर्शन होते थे । फिर भी जब श्री तोतापुरी महाराज के श्रीचरणों में वे बैठे, उन्हें गुरुरूप में स्वीकार किया तभी उन्हें ब्रह्मज्ञान हुआ । नामदेवजी महाराज को भी भगवान विट्ठल के प्रत्यक्ष दर्शन होते थे फिर भी जब वे विसोबा खेचर के श्रीचरणों में गये तब ही उन्हें पूर्ण बोध हुआ । अत: परमात्म-प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है । जब तक ब्रह्मज्ञानी गुरु नहीं मिलते तब तक भले ही साकार ईश्वर के दर्शन हो जायें किन्तु भगवद्तत्त्व का साक्षात्कार नहीं होता । ब्रह्मज्ञान तो केवल गुरुकृपा से ही संभव है ।

> *पत्थर को भगवान बनाना आसान है क्योंकि पत्थर कभी शिल्पी का विरोध नहीं करता लेकिन इस जीव को, दो हाथ-पैरवाले मनुष्य को शिव बनाना बड़ा कठिन है क्योंकि यह अज्ञानी जीव जरा-जरा बात पर विरोध करता है ।*

ऐसे ब्रह्मज्ञानी गुरु मिलना भी अत्यंत कठिन है । करोड़ों-करोड़ों व्यापारी मिल जायेंगे, साहब मिल जायेंगे, लाखों-लाखों पंडित मिल जायेंगे, सैकड़ों और हजारों गुरु मिल जायेंगे, किन्तु ब्रह्मज्ञानी गुरु... सद्गुरु तो कभी-कभी, कहीं-कहीं ही मिलते हैं । ऐसे सद्गुरु मिल जायें फिर भी उनमें श्रद्धा होना कठिन होता है । जब तक श्रद्धा नहीं होती तब तक व्यक्ति ऊपर-ऊपर से ही थोड़ा फायदा उठाकर रह जाता है कि 'चलो, गुरुजी को मन स ही मान लेते हैं क्योंकि व्यावहारिक रूप से मानेंगे तो जिम्मेदारी आ जायेगी । मन से ही मानकर गाड़ी चलाओ ।' फिर जब पुण्य जोर करते हैं तब गुरु को व्यावहारिक रूप

से मानना शुरू करता है, दीक्षित होता है । दीक्षित होने के बाद भी गुरु की बातें यदि अपने मन के अनुकूल नहीं लगती या मन को समझ में नहीं आती तो बोलेगा कि 'गुरुजी को ऐसा नहीं करना चाहिए... गुरुजी को वैसा नहीं करना चाहिए ।' अत: अपनी अल्प मति के कारण साधक गुरु से पूर्ण फायदा नहीं उठा पाता ।

साधना करते-करते साधक का अन्त:करण जब शुद्ध होता है , उसमें संयम, सदाचार, तत्परता, गुरुभक्ति आदि दैवी गुण विकसित होने लगते हैं, गुरुसेवा में वह तत्पर होने लगता है तब कहीं वह गुरु को थोड़ा-थोड़ा समझ पाता है, उनसे लाभ ले पाता है । फिर भी जब तक गुरुकृपा पूर्ण रूप से नहीं मिलती तब तक साक्षात्कार नहीं होता है । सेवा और साधना करते-करते जब शिष्य गुरुकृपा को पाने में समर्थ हो जाता है और एकबार गुरुकृपा से उसे अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है फिर उसे जन्म-मरण के बंधन से सदा के लिए छुटकारा मिल जाता है ।

परमात्म-प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता अनिवार्य है । जब तक ब्रह्मज्ञानी गुरु नहीं मिलते तब तक भले ही साकार ईश्वर के दर्शन हो जायें किन्तु भगवदृतत्त्व का साक्षात्कार नहीं होता । ब्रह्मज्ञान तो केवल गुरुकृपा से ही संभव है ।

जीवन जीवनदाता को पाने के लिए ही है, गढ़ाई करने के लिए ही है । उसको आकार देनेवाले कोई सद्गुरु मिल जायें ! बस फिर तुम्हें सिर्फ मोम जैसा नरम ही बनना है । बाकी कार्य तो सद्गुरु स्वयं ही करेंगे। उनकी कृपा किसीके द्वारा बाधित नहीं होती । हममें केवल उनके द्वारा अनुशासित होने का उत्साह होना चाहिए ।

एक सद्गुरु में ही वह शक्ति है कि जो मनुष्य के जन्म-मरण के मूल कारण अज्ञान को काटकर उसे मुक्त कर सकते हैं ।

ऐसा नहीं कि 'शिष्य को कहीं बुरा न लग जाये, कहीं वह भाग न जाये' इस भय से गुरु शिष्य को न डाँटें । शिष्य ऐसा महामूर्ख होगा तो गुरु उसको नहीं डाँटेंगे और एकदम बुद्धिमान होगा तब भी नहीं डाँटेंगे । लेकिन अर्धमूर्ख होगा तो उसको डाँटने में गुरु घबरायेंगे नहीं । शिष्य को अर्धमूर्ख ही रहने दें तो फिर गुरु का कर्त्तव्य क्या ? ऐसे शिष्य की ही कटाई-छंटाई करके, अनुशासनादि करके गुरु उसे विकसित करते हैं । एक सद्गुरु में ही वह शक्ति है कि जो मनुष्य के जन्म-मरण के मूल कारण अज्ञान को काटकर उसे मुक्त कर सकते हैं ।

मुर्शिद वही है जो आसूदायें मंजिल कर दे ।
वरना रास्ता तो हर शख्स बता देता है ॥

हमारी उँगली पकड़कर, कदम से कदम मिलाकर अंधकारमय गलियों से बाहर निकालकर लक्ष्य तक पहुँचानेवाले केवल सद्गुरु ही होते हैं ।

सद्गुरु मेरा शूरमा
करे शब्द की चोट ।
मारे गोला प्रेम का
हरे भरम की कोट ॥

शिष्य देह में खड़ा है, जगत् की सत्यता में खड़ा है, मेरे-तेरे में खड़ा है । कोई स्वर्ग से आया है तो कोई सीधा नरक से आया है । शिष्य भी अलग-अलग प्रकार के होते हैं । सब शिष्य एक जैसे हो जायेंगे, ऐसा नहीं है । उनका आपसी मतभेद तो रहेगा ही । घर में पाँच-छ: सदस्य होते हैं, उनमें भी दो-दो पार्टी, तीन-तीन मत हो जाते हैं तो लाखों-लाखों शिष्यों में मत-मतान्तर हो यह स्वाभाविक है ।

इन सबको साधना एवं स्नेह की रज्जू में बाँधकर चलना, चलाते रहना यह किसी साधारण व्यक्ति का काम नहीं है । ऐसे दुष्कर कार्य को सद्गुरु निभाते हैं ।

गुरु धोबी शिष्य कपड़ा, साबुन सर्जनहार ।
सूरत-शिला पर बैठ के, निकले मैल अपार ॥

हम लोगों में जन्म-जन्मांतर का मैल है । किसीको काम का तो किसीको लोभ का, किसीको प्रसिद्धि की

वासना है तो किसीको बहू-बेटियाँ ठीक करने की। न जाने कितनी-कितनी वासनाएँ इस जीव में भरी हैं ! फिर भी उन वासनाओंरूपी मैल को नष्ट करके जीव को उसके शुद्ध स्वरूप में जगाने के लिए गुरु कितना प्रयास करते हैं ! कितनी उनकी जिम्मेदारी होगी ! कितनी उनके हृदय की विशालता होगी ! कितना उनका हृदय स्नेह से परिपूर्ण होगा !

गुरु के हृदय का स्नेह और करुणा न मिले तो एक भी शिष्य अपने बल से नहीं टिक सकता क्योंकि शिष्य अपनी ही मान्यताओं में, अपने ही ढंग से जीता है।

गुरु के हृदय का स्नेह और करुणा न मिले तो एक भी शिष्य अपने बल से नहीं टिक सकता क्योंकि शिष्य अपनी ही मान्यताओं में, अपने ही ढंग से जीता है। शिष्य को जो दिखता है, गुरु को उससे बिल्कुल निराला दिखता है। शिष्य को जगत् सत्य लगता है, देह 'मैं' लगता है एवं भगवान कहीं और दिखते हैं। जबकि गुरु उस अनुभव में जगे होते हैं जहाँ ईश्वर और जीव का भेद ही नहीं बचता। गुरु को ईश्वर अपना-आपा नजर आता है और जगत् मिथ्या लगता है। फिर भी शिष्य की श्रद्धा और गुरु की करुणा-कृपा की डोर से गुरु-शिष्य का नाता चलता रहता है।

शिष्य भीतर से जितना-समर्पित होता जाता है उतनी-उतनी गुरुकृपा विशेष रूप से उसके हृदय पर छाती जाती है। गुरुकृपा इतनी खतरनाक होती है कि वह शिष्य को मार भगाती है।

यहाँ एक सवाल हो सकता है कि गुरुकृपा शिष्य को मार भगाती है, वह कैसे ? जैसे : बारिश के दिन हों। आप घर में सोये हुए हों। बाहर से कोई आवाज दे : ''भाई ! दरवाजा खोलिए। बाहर बारिश हो रही है, मैं भीग रहा हूँ।''

शिष्य भीतर से जितना-जितना समर्पित होता जाता है उतनी-उतनी गुरुकृपा विशेष रूप से उसके हृदय पर छाती जाती है।

आपने दरवाजा खोल दिया। वह आदमी कमरे में आकर खड़ा हो गया। फिर धीरे-से बैठ गया। बाद में उसने पैर भी पसार दिये। अब आप पूछें कि : ''भाई ! क्या करते हो ?''

वह जवाब देगा : ''क्या करता हूँ यह बाद में बताऊँगा। पहले तकिया तो दो, आराम करना है।''

तब आप कुछ नहीं कह पायेंगे। कमरा भी आपका है, अंदर आने की अनुमति भी आपने ही दी है फिर भी उस समय आप मजबूर हो जाते हो।

ऐसे ही गुरुकृपा 'हरि ॐ... हरि ॐ...' करते- करते आपके द्वार पर आती है। कैसे भी करके आप हृदय का द्वार जरा-सा खोल देते हो। गुरुकृपा आकर आपके हृदय के कोने में बैठकर धीरे-धीरे अपने पैर पसारती जाती है। आपके अहं को कान से पकड़कर बाहर निकाल देती है। बाद में आपको (अहं को) ही बोलती है कि अब तुम इधर मत आना।

यह कोई साधारण बात थोड़ी है !

जब 'मैं' था तब हरि नहीं, अब हरि है 'मैं' नाहीं।
प्रेमगली अति साँकरी, ता में दो न समाहीं ॥

'मैं' अर्थात् अहं भी रहे और ईश्वर भी रहे यह संभव नहीं है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है :

इश्क करना जाँ बचाना
यह भी क्या हो सकता है।
आशिके दिले दर्द हो तो भला
कोई सुख से सो सकता है ?

जैसे गहरी नींद और हृदयाघात (हार्टअटैक) एक साथ नहीं रह सकते, ठीक वैसे ही गुरुतत्त्व से मुहब्बत करना, आनंद लेना, मुक्ति का अनुभव करना... दूसरी ओर अपने अहं को भी बचाना, ये दोनों साथ-साथ संभव नहीं हैं।

जब जीव अपने अहंकार को मिटा देता है तो उसकी जगह पर ईश्वर आ बैठता है। ईश्वर आ बैठेगा क्या, वहाँ ईश्वर तो था ही, अहं मिटने पर वह प्रगट हो जाता

है । फिर साधक को न मंदिर जाने की आवश्यकता रह जाती है न मस्जिद जाने की, न चर्च जाने की आवश्यकता रह जाती है न गुरुद्वारे जाने की, क्योंकि परमात्मा स्वयं उसके हृदयमंदिर में प्रगट हो जाता है ।

गुरु ज्ञान देते हैं, प्रसन्नता देते हैं, आनंद देते हैं, साहस, सुख और जीवन की सही दिशा देते हैं । जो हारे हुए को हिम्मत दें, हताश-निराश व्यक्ति के जीवन में आशा और उत्साह का संचार कर दें, मनहूस उदास व्यक्ति को अपनी मधुर मुस्कान से प्रफुल्लित एवं आनंदित कर दें, उलझे हुए को सुलझा दें अर्थात् जीवन-पथ पर आनेवाली परेशानियों को मिटाने का उपाय बता दें एवं जन्म-मरण के चक्र में फँसे हुए मानवों को मुक्ति का अनुभव करा दें, वे ही सद्गुरु होते हैं ।

जिसके पास गुरुकृपारूपी धन है, वह सम्राटों का सम्राट है । जो गुरुदेव की छत्रछाया के नीचे आ गये हैं, उनके जीवन चमक उठते हैं । गुरुदेव ही एकमात्र ऐसे तारणहार हैं जो आत्मज्ञान के पथ पर शिष्य को आनेवाली तमाम बाधाओं को काट-छाँटकर उसे ऐसे पद पर प्रतिष्ठित कर देते हैं जहाँ पहुँचकर वह पुनः वापस नहीं आता अर्थात् सदा के लिए मुक्त हो जाता है ।

गहरी नींद और हृदयाघात (हार्टअटैक) एक साथ नहीं रह सकते । ठीक वैसे ही गुरुतत्त्व से मुहब्बत करना, आनंद लेना, मुक्ति का अनुभव करना... दूसरी ओर अपने अहं को भी बचाना, ये दोनों साथ-साथ संभव नहीं हैं ।

प्रभु ! परम प्रकाश की ओर ले चल...

स्वयं जिसमें संतत्व का अंश नहीं, संत के संतत्व को वह अभागा जान भी कैसे सकता है ? उसको तो दूसरे में दोष देखने में मजा आता है, जो दोष न हो उसे भी ढूँढ़ निकालने में उसकी रुचि होती है । ऐसे आसुरी स्वभाववाले पामर व्यक्ति स्वयं अशान्त होते हैं, परेशान जीते हैं और परेशानी फैलाते हैं ।

एक सत्पुरुष के सम्बन्ध में कुछ आलेखन हो रहा था । उसी समय एक व्यक्ति आया और बोला :

''उनके बारे में तो न जाने क्या-क्या कहा जाता है ?''

''क्या तुमने स्वयं उन्हें देखा है ? देखने और सुनने में भी अन्तर होता है ।''

''किन्तु, ऐसी बातें वे लोग कहते हैं, जो उनके पास जाते थे ।''

''तुम उनकी बात से ही निष्कर्ष निकाल लो । सच्चा मित्र वह है, जो अपने मित्र के बारे में असंगत विचार प्रकट न करे । कहावत है कि समझदार दुश्मन नादान दोस्त से अच्छा होता है । फिर हम किसी बात को बिना विचारे क्यों मान लें ?''

बलिदान के बिना प्रेम अधुरा है । जहाँ पर अपना तुच्छ स्वार्थ न साधा जा सके, कुछ भ्रम पैदा हो, अनिच्छा जगे वहाँ अनादर बरसने लगता है । ऐसा प्रेम किस काम का ? ऐसा सम्बन्ध कैसा ?

बाल्शेम्टोव नाम के एक हासिद धर्मगुरु थे । वे अतिशय पवित्र आत्मा थे । फिर भी उनके विरोधियों ने उनकी निन्दा का ऐसा मायाजाल फैलाया कि वे अकेले पड़ गए । केवल पाँच साधक ही उनके पास बचे रहे । एक विरोधी ने उन पाँचों को भी फोड़ लेने का अपना दाव चलाया ।

एक शिष्य ने उससे कहा : ''हे निन्दाखोर ! तेरी वाणी में अमृत भरा है और तू अपने को मेरा हितकारी होने का दिखावा करता है किन्तु मुझे पता है कि तेरे हृदय में विष भरा है । तू एक खतरनाक व्यक्ति है । हम लोग तेरे जाल में नहीं फँसेंगे ।''

सच्चे स्वजन के सुख-दुःख अपनत्व भरे होते हैं । उनके प्रेम में कभी जुदाई नहीं होती । सामान्य रूप से वे सभी जिम्मेदारियाँ निभाते हैं और जब कोई कसौटी का समय आता है, तब वे एकदम तैयार हो जाते हैं । उन्होंने जिन्हें प्रेम दिया है और उनसे बदले में जो अनेक गुना प्रेम पाया है, उनके विरुद्ध एक भी शब्द सुनने को वे तैयार नहीं होते ।

साधना प्रकाश

परमात्म-पथ पर...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हमने मनमानी साधना बहुत जन्मों से की होगी और मनमानी असाधना भी की होगी । साधना और असाधना साथ में चलते-चलते कई युग बीत गये होंगे । अब तो अपने साध्यस्वरूप परमात्मा के चरणों में ही अपनी साधना की डोर बाँध दो । जैसे, दरिया में किश्ती होती है और किनारे पर रस्सी से बँधी होती है । लहरों में, तरंगों में किश्ती कितनी भी उछले, नाविक जब चाहे रस्सी से खींचकर किश्ती को किनारे ला सकता है । ऐसे ही परमेश्वर की शरण में अपने मनरूपी किश्ती का खूँटा बाँध दो । मन इधर-उधर जाय तो फिर कह दो राम... राम... ।

मेरे प्रभु राम... राम... राम...
दुःख का क्या है काम ।
जप ले राम... राम... राम... ॥
अहं का नहीं यहाँ काम ।
केवल राम... राम... राम... ॥
भय-शोक का नहीं यहाँ नाम ।
केवल राम... राम... राम... ॥

मनमानी दौड़ तो आप युगों से लगाते आये हो, साधन-असाधन में भटकते आये हो । अब तो राम में ही रसमय होने का पुरुषार्थ करो ।

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोर ॥

अपना मनचाहा तो कीट-पतंग भी करते रहते हैं, मनभावन काम तो मूर्ख भी कर लेता है । अब तो हे गुरुदेव ! जो आपको अच्छा लगे उसीमें हमारा भला है । हे परमेश्वर ! जो तुझे अच्छा लगे उसीमें हमारा भला है । नानकजी ने कहा है :

जो तिद् भावे सो भलिंकार ।

मैं अपने मन से, चतुराई से सुखी होने के लिये सदियों से भटकता रहा, मन को जो अच्छा लगा, रुचिकर लगा वह करता रहा । अब तो-

मेरो चिन्त्यों होत नाहीं, हरि को चिन्त्यों होय ।
हरि को चिन्त्यो हरि करे, मैं रहूँ निश्चिन्त ॥
बालक को चिन्त्यो होत नाहीं,
मात-पिता को चिन्त्यो होय ।

इसीमें बच्चे का मंगल है । बालक जैसा मन में आवे ऐसा करने लग जाय तो कभी भी वह डॉक्टर या प्रोफेसर नहीं बन सकेगा, अंगूठाछाप ही रहेगा ।

हमने मनमानी साधना बहुत जन्मों से की होगी और मनमानी असाधना भी की होगी । साधना और असाधना साथ में चलते-चलते कई युग बीत गये होंगे । अब तो अपने साध्य स्वरूप परमात्मा के चरणों में ही अपनी साधना की डोर बाँध दो ।

जो रुग्ण मन का अध्ययन करनेवाले वैज्ञानिक हैं वे कहते हैं कि 'मन को रोको मत ।' जब मन को कहीं भगवान का आश्रय नहीं मिलेगा तो मन नीचे चला जाएगा । अतः मन को रोको । मन की नाव, मन की खूँटी उस परमेश्वर से बाँधो । वह इधर-उधर भटके लेकिन फिर वहीं आ जाए । पशु खूँटी से बँधा होता है तो इधर-उधर चारा चरता है लेकिन खूँटी के कारण दूर नहीं जाता है । ऐसे ही परमेश्वर से, आत्मा-परमात्मा से मनवा दूर न जाय ।

जो तिद् भावे सो भलिंकार ।

जो तुझे अच्छा लगे हमारे लिये वही अब हो जाए । जो हमारे लिये अच्छा है वही विधि का विधान

हमें स्वीकार्य है । अमीरी अच्छी है तो अमीरी सही, गरीबी अच्छी है तो गरीबी सही, मान अच्छा है तो मान सही, अपमान अच्छा है तो अपमान सही । देनेवाले का हाथ करुणामय है, देनेवाले का हृदय करुणामय है, देनेवाला परम सुहृद है ।

भोक्तारं यज्ञ तपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

'भक्त मुझे सब यज्ञों और तपों का भोक्ता, सम्पूर्ण लोकों का महान् ईश्वर तथा सम्पूर्ण प्राणियों का सुहृद अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी जानकर शान्ति को प्राप्त हो जाता है ।' (गीता : ५.२९)

जो रुग्ण मन का अध्ययन करनेवाले वैज्ञानिक हैं वे कहते हैं कि 'मन को रोको मत ।' किन्तु मन को कहीं भगवान का आश्रय नहीं मिलेगा तो मन नीचे चला जाएगा । अतः मन को रोको ।

जो शांति पाता है वही सच्चा सुख पाता है, वही सच्चा ज्ञान पाता है । बाकी के लोग तो सूचनाएँ एकत्रित करके घूमते हैं बेचारे । सच्चा ज्ञान भीतर के स्रोत्र से प्रकट होता है, बाकी सब सूचनाओं की स्मृति है । सूचनाओं की स्मृति बुरी नहीं है लेकिन उस परमात्मा के आगे यह बहुत ही छोटी चीज है ।

फिरत-फिरत प्रभु आइयो
पड़ियो तव शरणाय ।
नानक की प्रभु बिनती
तू अपनी भगति लाय ॥

''हे प्रभु ! मैं अनेक जन्मों से फिरता आया, कभी पशु के गर्भ में तो कभी पक्षी के गर्भ में, कभी कीट-पतंगों के गर्भ में तो कभी मनुष्यों के गर्भ में, हजारों, लाखों करोड़ो योनियों में फिरता-फिरता अब तेरी शरण आ रहा हूँ । हे नाथ ! अब तू मुझे संभालना ।'' ऐसी प्रार्थना करो ।

तू सदा सलामत निरहंकार ।

प्रलय होने पर भी तेरा वजूद ज्यों-का-त्यों बना रहता है क्योंकि तू सदा सलामत रहता है ।

जो सदा सलामत का हो गया उसे फिर डर किस बात का ? उसे शोक-भय किस बात का ? उसे मौत और जन्म का चक्कर किस बात का ? जब मन तेरी हाँ में हाँ नहीं कर पाता है तभी दुःखी होता है । लेकिन जब मन तेरा होकर खड़ा हो जाता है और तेरी हाँ में हाँ करने की कला आ जाती है तो दुनिया की कोई भी परिस्थिति उसे दुःख नहीं दे सकती । फिर तेरी सारी की सारी योग्यताएँ उस साधक के द्वारा निखरने लगती हैं ।

आई. ए. एस. किया हुआ लड़का जब सरकार का होकर जीता है तो उसका बल बढ़ जाता है । कोई नेता जब राष्ट्रपति पद पर आ जाता है तो उसका बल राष्ट्रव्यापी हो जाता है । ऐसे ही जीव जब परमात्मपद में प्रतिष्ठित हो जाता है तो उसकी पहुँच ब्रह्मांडव्यापी हो जाती है । ऐसे ब्रह्मवेत्ताओं से जो दीक्षित हैं, यमराज भी उनका स्वागत करते हैं ।

आई. ए. एस. किया हुआ लड़का जब सरकार का होकर जीता है तो उसका बल बढ़ जाता है । कोई नेता जब राष्ट्रपति पद पर आ जाता है तो उसका बल राष्ट्रव्यापी हो जाता है । ऐसे ही जीव जब परमात्मपद में प्रतिष्ठित हो जाता है तो उसकी पहुँच ब्रह्मांडव्यापी हो जाती है ।

ब्रह्मज्ञानी संग धर्मराज
करे सेवा नानक ।

नानकजी कहते हैं कि ब्रह्मवेत्ता गुरु मिल जाएँ, उन गुरुओं का संग मिल जाए तो यमराज भी उस साधक की सेवा करने को तत्पर रहते हैं, यह वह पद है परमात्मा के प्यारों का ।

दुनियादार जहाँ सिर पटकते हैं ।
आशिक वहाँ कदम रखते हैं ॥

दुनिया के लोग जिस सम्पत्ति और रूपयों-पैसों

के लिये सिर पटकते हैं, आशिकों के कदमों में वह सम्पति स्वत: ही दौड़ी चली आती है। यदि वह उसे भी ठोकर मारे तो रिद्धि-सिद्धियों की सम्पदा उसके पास आती है। यदि उससे भी साधक बेपरवाह रहे तो साधक परमात्मा से एक हो जाता है। फिर वह सम्पत्ति का याचक नहीं, सम्पत्ति का दाता होता है। सुख का याचक नहीं, सुख का दाता होता है। ज्ञान का याचक नहीं, ज्ञान का दाता होता है। माधुर्य का याचक नहीं, माधुर्य का दाता होता है। ऐसे दाता धरती पर कभी-कभी, कहीं-कहीं मिल जाते हैं तो साधक-भक्त निहाल हो जाते हैं।

मन जहाँ जाना चाहता है वहाँ जाता है, तू उसके पीछे घसीटा जाता है। मन कई जन्मों में भटकाने ले गया और तू भटकता है। अब गुरुरूपी सम्राट मिला है और तुझे कहता है कि तू भी सम्राट है। तू मन का दास मत बन, मन का स्वामी बन।

रामकृष्ण के रूप में दाता मिले तो नरेन्द्र निहाल हो गये। रैदास के रूप में दाता मिले थे मीरा को तो मीरा निहाल हो गई, खुशहाल हो गई। मतंग ऋषि के रूप में दाता मिले तो शबरी भीलन निहाल हो गई।

मनमानी साधना करनेवाले तपस्वी तप कर-करके थक गये, उनकी जटाएँ इतनी बढ़ गई कि धरती को छू रही थी लेकिन श्रीराम उनके पास नहीं गये, श्रीराम शबरी के आँगन में गये। वे तपस्वी भागते-भागते आये श्रीराम के दीदार के लिये लेकिन श्रीराम के पहले उन्हें शबरी का दीदार होता है क्योंकि शबरी को मिल गये थे मतंग जैसे दाता। आसुमल को मिल गये लीलाशाहजी दाता...

दीक्षा कभी व्यर्थ नहीं जाती है। एक दिन में नहीं तो एक महीने में उसका रंग निखरता है। एक महीने में निखरने की क्षमता नहीं है तो दो महीने में, दस महीने में उसका रंग निखरेगा। एक बार यह शांभवी दीक्षा मिल गई तो साधक को साधना कराकर ही छोड़ेगी, यह इसकी विशेषता है।

जिसको वह ब्रह्मवेत्ता दाता मिल जाता है, ब्रह्मसुख का दाता मिल जाता है, ब्रह्मरस का दाता मिल जाता है और तत्परता से चलनेवाला भक्त-साधक चलता ही रहता है तो पाता ही रहता है, पाता ही रहता है, उसका कोई अन्त नहीं क्योंकि वह अनन्त है। उसका कोई छोर नहीं। संसार का तो अन्त होता है लेकिन परमेश्वर के सुख का, परमेश्वर के माधुर्य का अन्त नहीं।

प्रेमरस नित्य नवीन,
नित्य सुखरूप।

मनमुखता से कभी किसीको सच्ची रोशनी नहीं मिली। जैसे कोई मंत्री अपने राजा को जेल में डाल दे और उसे खाने-पीने को दे लेकिन यह कभी नहीं चाहेगा कि राजा आजाद हो जाए क्योंकि इससे मंत्री का शासन खतरे में पड़ जाएगा। ऐसे ही हे जीवात्मा ! तू राजा है और मन तेरा मंत्री है लेकिन आज तक वह मंत्री तुझे जेल में डालकर अपनी सत्ता चला रहा है, तेरी बिल्कुल नहीं चलती। मन जहाँ जाना चाहता है वहाँ जाता है, तू उसके पीछे घसीटा जाता है। मन कई जन्मों में भटकाने ले गया और तू भटकता है। अब गुरुरूपी सम्राट मिला और तुझे कहता है कि तू भी सम्राट है। तू मन का दास मत बन, मन का स्वामी बन। इन्द्रियों और विकारों का गुलाम मत बन, उनका स्वामी बन और स्वामी के चिन्तन से तेरा स्वामीत्व जगा, स्वामी के संग से तू भी स्वामी हो जा। आज तक गुलामों के संग से गुलाम बना रहा। अब कोई स्वामी खोज ले। सच्चे अर्थ में जो इन्द्रियों का स्वामी है, मन का स्वामी है वही वास्तव में स्वामी है।

हम अब स्वामियों के रास्ते चलेंगे, दासों के, गुलामों

के रास्ते नहीं । जो देखने के गुलाम, सूँघने के गुलाम, चखने के गुलाम, अहं के गुलाम और मन के गुलाम हैं उनकी बातों में नहीं आएँगे लेकिन जो परमात्मामय जीवन जीते हैं उन्हीं की बातों को महत्त्व देकर अपनी गुलामी के संस्कारों को उखाड़ फेंकेंगे । तभी तो दीक्षा पूर्णरूप से विकसित होगी ।

दीक्षा कभी व्यर्थ नहीं जाती है । एक दिन में नहीं तो एक महीने में उसका रंग निखरता है । एक महीने में निखरने की क्षमता नहीं है तो दो महीने में, दस महीने में उसका रंग निखरेगा । एक बार यह शांभवी दीक्षा मिल गई तो साधक को साधना कराकर ही छोड़ेगी, यह इसकी विशेषता है ।

धरती में बीज पड़ा है । आज नहीं फूटा तो कल, परसों, छः माह के बाद भी बीज तो फूटता ही है । कोई बीज सड़ जाता है तो नहीं फूटता लेकिन दीक्षा का बीज सड़नेवाला नहीं है । यह शाश्वत का बीज है । इस पर प्रकृति का प्रभाव नहीं पड़ता ।

जब ही नाम हृदय धर्यो, भयो पाप को नास ।
जैसे चिन्गी आग की, पड़ी पुराने घास ॥

पूर्वजन्म का ब्रह्मचारी रैदास होकर विशाल वटवृक्ष की भाँति विकसित हुआ। पूर्वजन्म का दीक्षित साधक अष्टावक्र के रूप में माता के गर्भ में विकसित हुआ । यह दीक्षा का बीज ऐसा शाश्वत बीज है जिसे मौत भी नहीं मिटा सकती है ।

ब्रह्मवेत्ता सद्‌गुरु से एक बार दीक्षा मिल जाए, बस ! फिर साधक उस साधना-पथ पर चल निकला तो रस और फल अभी-अभी मिलने लगता है और नहीं भी चला तो भी वह दीक्षा का बीज मिटनेवाला नहीं होता । घुमा-फिराकर ले आएगा इसी रास्ते पर । हजार-हजार थपेड़ों के बीच से ले आएगा पुनः इसी रास्ते पर ।

'बाँह छुड़ाकर जाते हो... सफल तो तब मानूँ जब हृदय छुड़ाके जाओ'– सूरदास ने जो कहा है, सही कहा है । हे प्रभु ! एक बार तू हृदय में आ गया फकीरों की कृपा से, तेरा नाम-तेरा ठाम आ गया, अब तू कहाँ जाएगा ? क्योंकि तुझे भागने के लिये कोई जगह ही नहीं है, तू सर्वत्र इतना ओतप्रोत है, तू इतना ठसाठस भरा है ।

पूरे हैं वे मर्द जो हर हाल में खुश हैं ।
अब हम हर हाल में खुश रहेंगे ।
हर रोज खुशी, हरदम खुशी, हर हाल खुशी ।
जब साधक मस्त फकीर का हुआ...
तो फिर क्या दिलगीरी बाबा ?

जो होगा देखा जाएगा, फिकर फेंको कुएँ में... उत्सव मनाओ । अन्त समय जिस परमेश्वर में जाना है उस परमेश्वर में अभी क्यों न लग जाएँ ?

❀

(पृष्ठ ३० का शेष)

जिसके विरह में वह बुढ़िया रो रही है । लक्षम्मा ने आकाश की तरफ देखा, बुढ़िया को आश्वासन दिया और अपने वही पुराने वृक्ष के नीचे आकर योग-शक्ति से बालक को जीवित करके सदा के लिए अपने शरीर को छोड़कर भगवान में समा गयी । सुबह लोगों ने देखा कि लक्षम्मा का देहावसान हो गया है । उसकी अंतिम क्रिया सब लोगों ने मिलकर की । फिर वहीं उसी जगह पर लोगों ने माँ का मंदिर बनवाया । वैशाख की शुक्ल पक्ष की छठ्ठी को यह घटना घटी थी और सप्तमी की सुबह को पता चला कि वे ब्रह्मलीन हो गई हैं । आज भी वैशाख शुक्ल सप्तमी को वहाँ एक बड़ा भारी मेला लगता है ।

देखिये, एक लड़की परमार्थ के पथ पर निकल पड़ी तो वहाँ अभी तक उसके द्वारा लोगों को प्रेरणा मिलती है । तुम भी थोड़ा-सा भजन करो फिर चाहे लक्षम्मा नगर पहुँचो या किसी और नगर पहुँचो, चाहे न भी पहुँचो किन्तु सारे नगर जिससे दिखते हैं उस आत्मनगर में पहुँच जाओ तो बेड़ा पार हो जायेगा । कल्याण हो जायेगा ! तुम्हारा तो कल्याण होगा ही, तुम्हारे इक्कीस कुलों का भी कल्याण हो जायेगा, तुम्हारे संपर्क में आनेवाले लोगो का भी कल्याण हो जायेगा... ऐसे तुम महान् हो सकते हो ।

नारायण... नारायण... नारायण... नारायण...

❀

पक्का घड़ा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।

'संपूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरन्तर भजता है वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है ।'

(श्रीमद्भगवद्गीता : ६.४७)

जो केवल मंदिर, मस्जिद और चर्च में ही भगवान को नहीं देखता है, साक्षी रूप से, सोहं स्वरूप से उसे भजता है वह भगवान को अत्यंत प्रिय है । जो मंदिर-मस्जिद में नहीं जाते उनकी अपेक्षा जानेवाले श्रेष्ठ हैं किन्तु उनसे भी हृदयमंदिर में जानेवाला योगी प्रभु को अत्यंत प्रिय है । जिसको हृदयमंदिर में पहुँचानेवाले कोई महापुरुष मिल जाते हैं उसका बाहर के मंदिर में जाना सार्थक हो जाता है ।

जो मंदिर-मस्जिद में नहीं जाते उनकी अपेक्षा जानेवाले श्रेष्ठ हैं किन्तु उनसे भी हृदयमंदिर में जानेवाला योगी प्रभु को अत्यंत प्रिय है । जिसको हृदयमंदिर में पहुँचानेवाले कोई महापुरुष मिल जाते हैं उसका बाहर के मंदिर में जाना सार्थक हो जाता है ।

गोरा कुंभार नामक एक प्रसिद्ध संत हो गये । उनका घर ऐसी जगह पर था कि तीर्थ में आते-जाते वक्त कई संत उनके घर पर विश्राम करने के लिए रुक जाते थे । संत लोग उनके घर दो-पाँच दिन ठहरते, अपनी थकान मिटाते, विश्रांति लेते, चर्चा और सत्संग करते थे ।

एक बार ऐसे ही एक संतमण्डली वहाँ पहुँची जिसमें ज्ञानेश्वर महाराज, मुक्ताबाई, नामदेव आदि भी थे । भोजन-प्रसाद के बाद सब संत बैठे थे, ज्ञान-चर्चा-वार्ता-विनोद हो रहा था । मुक्ताबाई ने मटके के ऊपर रखी हुई थापी (मटके का परीक्षण करने की चीज) लेकर पूछा : ''यह क्या है ?''

गोरा कुंभार : '' इससे मैं हर मटके की परीक्षा करता हूँ कि वह कच्चा है या पक्का ।''

मुक्ताबाई : ''हम भी तो ब्रह्माजी के बनाये हुए मटके हैं । जरा आप हमारा भी तो थोड़ा परीक्षण करके देखिए ।''

सब संत सहमत हुए । गोरा कुंभार ने उठाया अपना मटका जाँचने का साधन और सबके सिर पर बारी-बारी से मृदु टकोरे मारने लगे । टकोरे मारते-मारते वे वहाँ पहुँचे जहाँ नामदेव बैठे थे । नामदेव के सिर पर टकोरे पड़े तो वे गुस्से से बोल उठे : ''मैं कोई मटका थाड़े ही हूँ ! मैं तो रोज भगवान विट्ठल के दर्शन करता हूँ ।''

तब गोरा कुंभार ने कहा : ''और सब घड़े तो पक्के हैं केवल यही एक घड़ा कच्चा है ।''

सब संत हँस पड़े । नामदेव को बहुत बुरा लगा । वे सोचने लगे कि : 'ये लोग क्या समझते हैं ? मैं इन लोगों को बता दूँगा ।' मेरे साथ भगवान विट्ठल प्रत्यक्ष आकर बात करते हैं ।

यह परिस्थिति का गर्व है । परिस्थिति को ही यदि जीवन मान लें तो ईश्वर के दर्शन होने पर भी जीवन अधूरा रह जाता है ।

नामदेव पहुँचे भगवान विट्ठल के मंदिर में और बड़ी आतुरता से उन्हें पुकारने लगे । उनकी व्याकुलता भरी पुकार सुनकर भगवान विट्ठल प्रकट हो गये । नामदेव बोले : ''हे मेरे विट्ठल ! गोरा कुंभार ने मुझे कच्चा घड़ा साबित किया है । सब संत भी इस बात से सहमत हुए हैं । क्या मैं कच्चा घड़ा हूँ ? मैं आपके दर्शन करता हूँ, आपसे बातें करता हूँ । मेरे विट्ठल !

इन लोगों को बता दो कि मैं कच्चा घड़ा नहीं हूँ । यह मेरी इज्जत का नहीं वरन् आपकी इज्जत का सवाल है ।''

भगवान विठ्ठल बोले : ''नामदेव ! ये लोग जो कह रहे हैं, सच ही कह रहे हैं ।''

नामदेव : ''विठ्ठल ! विठ्ठल ! क्या मैं कच्चा घड़ा हूँ ?''

विठ्ठल : ''हाँ ।''

नामदेव : ''हे मेरे विठ्ठल ! कृपा करके मुझे पक्का घड़ा बना दो ।''

विठ्ठल : ''यह मेरे वश की बात नहीं है । हाँ, यदि तू पक्का घड़ा बनना चाहता है तो एक उपाय है । जंगल में शिवजी का एक मंदिर है । वहाँ पर विसोबा खेचर नामक एक उच्च कोटि के संत रहते हैं । तू उनके पास जा । वे तुझे परिस्थितियों से पार अपने विठ्ठल तत्त्व में जगा देंगे । वे द्वैत में भी अद्वैत तत्त्व के दर्शन करा सकते हैं । इन संत की शरण में पहुँच जा । तेरा मेरे साथ स्नेहसंबंध हो गया है अत: मेरी बात तुझे समझ में न आयेगी । जा, श्रद्धा रखकर गुरु के चरणों में पहुँच जा ।''

नामदेव के सिर पर टकोरे पड़े तो वे गुस्से से बोल उठे : "मैं कोई मटका थाड़े ही हूँ ! मैं तो रोज भगवान विठ्ठल के दर्शन करता हूँ ।"

यह कहकर भगवान विठ्ठल अंतर्धान हो गये । भगवान की आज्ञानुसार नामदेव जंगल में गये और मंदिर में जाकर देखा तो वे संत बड़ी निश्चिन्तता से शिवलिंग पर पैर रखकर सो रहे हैं । जैसे भगवान विष्णु परिस्थितियों से पार क्षीरसागर में लेटे रहते हैं ऐसे ही वे संत परिस्थिति से पार निश्चिन्त तत्त्व में विश्रांति पाये हुए थे । नामदेव सोचने लगे : 'सूर्योदय तो हो चुका है और ये अभी तक सो रहे हैं ! ...और वह भी भगवान शिव के पावन विग्रह शिवलिंग पर पैर रखकर ! हमने तो सुना है कि ब्रह्मवेत्ता ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाते हैं किन्तु ये अभी तक इस प्रकार सो रहे हैं !'

नामदेव जंगल में गये और मंदिर में जाकर देखा तो वे संत बड़ी निश्चिन्तता से शिवलिंग पर पैर रखकर सो रहे हैं ।

नामदेव को तब यह पता नहीं था कि ब्रह्मवेत्ता जब जागते हैं तब ब्रह्ममुहूर्त होता है । वे सूर्योदय के बाद सोये हुए दिखते हैं किन्तु वास्तव में वे सोये हुए नहीं होते वरन् वे तो उस परम तत्त्व में विश्रांति पाते हैं जहाँ से पूरे विश्व को चेतना मिलती है ।

नामदेव की श्रद्धा डगमगायी ।

उन संत को दया आ गयी और बोल पड़े : ''नामदेव ! तुम्हें विठ्ठल ने भेजा है न ?''

अब तो नामदेव को और भी आश्चर्य हुआ कि मैं तो पहले कभी इनसे मिला नहीं और ये मेरा नाम तक जानते हैं ! मेरे और विठ्ठल के बीच की बात तो हम दोनों के सिवा और कोई नहीं जानता, उसे भी ये कैसे जान गये ! ये तो सचमुच अंतर्यामी हैं । नामदेव की डगमगाती श्रद्धा फिर स्थिर होने लगी और वे बोले :

''अरे ! आप तो अंतर्यामी हैं ! आप तन की जानते हैं और मन की भी जानते हैं । फिर भी मुझे थोड़ा संशय हो रहा है कि आप सूर्योदय के बाद भी सो रहे हैं और वह भी शिवलिंग पर पैर रखकर ? इसका कारण क्या है ?''

विसोबा खेचर : ''नामदेव ! मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ । अब मुझमें हिलने की शक्ति नहीं रही । अत: अब तुम मेरी सहायता करो । तुम्हीं मेरे पैर उठाकर ऐसी जगह रख दो जहाँ शिव न हो ।''

शिव अर्थात् कल्याण, मंगल । जहाँ कल्याणमय, मंगलमय भगवान न हो वहाँ पैर रखने के लिए उन्होंने नामदेव को आज्ञा दी । वैसे तो परमात्मा कण-कण में हर क्षण में है । कोई भी स्थल कभी भी परमात्मा से रहित कहाँ है ?

जले विष्णुः थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालमालाकुले विष्णुः सर्व विष्णुमयं जगत् ॥

विज्ञान ने भी बताया कि छोटे से छोटा कण हो,

माइक्रो कण भी हो तो उसे क्या नाम देना यह हमारी समझ में नहीं आता । जहाँ अनुसंधान का, हमारी बुद्धि का, हमारे रिसर्च का अंत आता है वहाँ कुछ तो है और वही सब कुछ है ।

'नेति... नेति... (यह भी नहीं... यह भी नहीं...)' ऐसा निषेध करते करते बाद में जो कुछ भी बचता है वही परमात्मा है, वही सबका आत्मा है ।

एक बार भगवान बुद्ध के शिष्यों ने बुद्ध से पूछा : ''भन्ते ! सत्य क्या है ? देह तो सत्य नहीं है । मन-बुद्धि भी सत्य नहीं है । चित्त भी सत्य नहीं है । अहं भी नहीं सत्य है तो फिर सत्य क्या है ? ईश्वर क्या है ?''

ब्रह्मवेत्ता जब जागते हैं तब ब्रह्ममुहूर्त होता है । वे सूर्योदय के बाद सोये हुए दिखते हैं किन्तु वास्तव में वे सोये हुए नहीं होते वरन् वे तो उस परम तत्त्व में विश्रांति पाते हैं जहाँ से पूरे विश्व को चेतना मिलती है ।

जवाब में बुद्ध शांत हो गये । क्यों ? क्योंकि उस तत्त्व का वर्णन हो सके ऐसा नहीं है । नानकजी ने भी कहा है :

मत करो वर्णन हर बेअंत है ।
क्या जाने वह कैसा है ॥

बुद्ध के बाद के लोगों ने 'कुछ नहीं है... कुछ नहीं है...' करके शून्यवाद का प्रचार कर दिया । कुछ भी नहीं याने शून्य है । अंतिम अवस्था शून्य है । आद्य शंकराचार्य ने कहा : ''शून्य-शून्य करके... **'अहिंसा परमो धर्मः'** करके अपने-आपको निर्बल मत बनाओ ।' करुणा और दया चाहिए परंतु कहाँ करुणा, कहाँ दया और कहाँ साहस चाहिए यह भी तो समझने की बात है ।''

नामदेव ने विसोबा खेचर के चरण उठाकर दूसरी जगह पर रखे तो वहाँ भी शिवलिंग प्रगट हो गया । तीसरी जगह पर, चौथी जगह पर रखे तो वहाँ भी शिवलिंग प्रगट हो गया । चारों दिशाओं में शिवलिंग प्रगट हो गये । यह देखकर नामदेव के आश्चर्य का पार न रहा ।

आद्य शंकराचार्य वेदांतिक तथ्य समझाने के लिए शास्त्रार्थ करने लगे । 'कुछ नहीं... कुछ नहीं' अर्थात् 'शून्य है' ऐसा कहनेवालों से शंकराचार्य ने प्रश्न किया कि : ''शून्य स्वप्रकाश्य है कि परप्रकाश्य है ? शून्य तो शून्य को नहीं जान सकता । शून्य को 'शून्य है' ऐसा जाननेवाला भी तो कोई होगा । यह शून्य को जाननेवाला ही सर्वस्व है, वही साक्षी है, वही जीवन है । दुःख आया, चला गया । सुख आया, चला गया । चिंता आई, चली गई । भय आया, चला गया । भाव आया, चला गया । दुर्भाव आया, चला गया । ये कुछ भी सत्य नहीं हैं । इन सबको जो देख रहा है, वह साक्षी परमात्मा ही सबका आधार है । इस जगत् का प्रकाशक वही परमात्मा है, वही जीवन है और पाने योग्य भी वही है । कोई विशेष परिस्थिति मिली तो क्या हुआ ? पत्नी मिली तो क्या हुआ ? पति मिला तो क्या हुआ ? धन मिला तो क्या हुआ ? आखिर में सब छूट जानेवाली चीजें ही तो मिली ? रहनेवाला तो एक परमात्मा ही है । जो एक बार मिला तो सदा के लिए मिल जाता है । अरे, मिल क्या जाता है ? वह तो मिला-मिलाया ही है । जरूरत है तो बस, अज्ञान को दूर करने मात्र की ।

नामदेव ने विसोबा खेचर के चरण उठाकर दूसरी जगह पर रखे तो वहाँ भी शिवलिंग प्रगट हो गया । तीसरी जगह पर रखे तो वहाँ भी शिवलिंग प्रगट हो गया । चौथी जगह पर रखे तो वहाँ भी शिवलिंग प्रगट हो गया । चारों दिशाओं में शिवलिंग प्रगट हो गये । यह देखकर नामदेव के आश्चर्य का पार न रहा । उनकी श्रद्धा ने जोर पकड़ा और वे कहने लगे :

''आपकी चरणरज के प्रभाव से सब जगह शिव ही शिव प्रगट हो गये । मैं आपको कौन-सी उपमा

दूँ ! आपकी क्या स्तुति करूँ ! मैं तो आपकी चरणरज को अपने सिर पर लगाता हूँ ।'' ऐसा कहकर उन्होंने विसोबा खेचर के दोनों चरण अपने मस्तक पर रख लिए । संत की कृपा कहो, उनकी चरणरज का प्रभाव कहो, नामदेव को भावसमाधि लग गई ।

तब विसोबा खेचर कहते हैं : ''नामदेव ! विठ्ठल जिससे विठ्ठल है और नामदेव जिससे नामदेव है, वह परम तत्त्व एक ही है । तुम दोनों का आत्मा-परमात्मा एक ही है । उसको तू जब खोज लेगा तभी तू पक्का घड़ा बन जाएगा और मुक्त हो जायेगा ।''

नामदेव को गुरुकृपा मिली है और विठ्ठल तत्त्व का साक्षात्कार हुआ है ।

गुरुकृपा हि केवलं... शिष्यस्य परम मंगलम् ।

गुरुकृपा के बिना ज्ञान संभव नहीं है और गुरुकृपा की प्राप्ति ईशकृपा के बिना संभव नहीं है ।

ईशकृपा बिन गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान ।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहिं वेद-पुरान ॥

भगवान राम ने भी कहा है :

मम दरशन फल परम अनूपा ।
जीव पावहिं निज सहज स्वरूपा ॥

मेरे दर्शन का परम फल यही है कि जीव को निज स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ।

विसोबा खेचर के सत्संग से नामदेव को परम विश्रांति मिली है । वे निःसंकल्प अवस्था में आ गये हैं । विसोबा खेचर ने नामदेव को संकेत किया :

''नामदेव ! अब तुम कहीं भी विचरो, तुम्हें कोई बंधन नहीं है । अब तो सारा जगत् तुम्हारे लिए ब्रह्मरूप हो गया । अब तो विठ्ठल तुमसे दूर नहीं और तुम विठ्ठल से दूर नहीं । सब विठ्ठल ही विठ्ठल है ।''

अब नामदेव को समाधि न करनी पड़ेगी न तोड़नी पड़ेगी । अब तो...

साधो भाई ! सहज समाधि भली...
गुरुकृपा भई जा दिन से।
दिन-दिन अधिक चली॥
साधो भाई ! सहज समाधि-भली...
खाऊँ-पीऊँ सो करूँ मैं पूजा।
हरूँ-फिरूँ सो परिक्रमा॥
सोऊँ तब मैं करूँ दण्डवत् ।
भाव न राखूँ दूजा ॥
साधो भाई ! सहज समाधि भली ...

नामदेव की यह अवस्था हो गयी । नामदेव घर आये । उनको घर में एक दिन, दो दिन, तीन दिन हो गये । अब विठ्ठल से रहा न गया तो स्वयं उनके कमरे में प्रगट हो गये और बोले :

''नामदेव ! क्या बात है ? अब तू मेरे पास मंदिर में क्यों नहीं आता ?''

नामदेव : ''प्रभु ! सच पूछो तो अभी मैं आपके पास आया हूँ । पहले तो मैं आपकी मूर्ति के पास आता था । अब तो आप मेरे लिए सर्वव्यापी हो गये हो । आपमें और मुझमें भी आप ही हो । मैं और आप एक ही तो हैं !''

विठ्ठल : ''नामदेव ! आज तक तू मेरे पास आता था । आज मैं तेरे पास आया हूँ । यही सत्संग का प्रभाव है, संतों की महिमा है । अब तू पक्का घड़ा हो गया ।''

ब्रह्मज्ञानी संत को मंदिर में जाने की या भगवान के दर्शन करने की जरूरत नहीं रहती । ब्रह्मज्ञान के बाद तो भगवान के साथ संत और संत के साथ भगवान रहते हैं । दोनों का कभी वियोग होता ही नहीं । कहते हैं :

ब्रह्मज्ञानी का भोजन ज्ञान ।
ब्रह्मज्ञानी का ब्रह्म ध्यान ॥
ब्रह्मज्ञानी को खोजे महेश्वर ।
ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर ॥

शास्त्र भी कहते हैं :

नास्ति ब्रह्म सदानन्द इति मे दुर्मति स्थिता ।
क्व गता सा न जानामि...

'सुखस्वरूप ब्रह्म मैं नहीं हूँ...' ऐसी जो मेरी मति थी वह मेरी दुर्मति थी । ब्रह्म की अनुभूति होते ही मेरी वह दुर्मति कहाँ चली गई मुझे पता ही न चला ।

जैसे सूर्योदय के होने के बाद अंधकार कहाँ चला जाता है यह पता ही नहीं चलता ऐसे ही ज्ञान होने के बाद पता नहीं चलता कि अज्ञान कहाँ गया ।

जो उस ब्रह्म-परमात्मा को आत्मरूप से जान लेता है उस पर तो देवता लोग भी बलिहारी जाते हैं । ऐसे अविनाशी पद को वह प्राप्त कर लेता है ।

मनुष्य के तेरह दोष उनकी निवृत्ति के उपाय

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

महाभारत के युद्ध की समाप्ति के पश्चात् युधिष्ठिर का चित्त राज्यभोग में आसक्त नहीं हो रहा है। युधिष्ठिर समझते हैं : ''राज्य आखिर कब तक ? ये भोग कब तक ? आँख को कितना भी दिखाएँगे लेकिन इसको तृप्ति नहीं होगी। कान को कितना भी नाच-गान सुना लें, लेकिन कब तक ? नाक के नथुनों को कितने भी इत्र या सुगंधित पुष्प सूँघायें लेकिन कब तक ? शरीर को, त्वचा को, स्पर्शसुख दिलावें तो भी आखिर कब तक ? ये भोग तो महा आपदा हैं। मुझे तो भगवद्प्राप्ति करनी है।''

युधिष्ठिर समाधान के लिये श्रीकृष्ण के पास जाते हैं लेकिन श्रीकृष्ण देखते हैं कि युधिष्ठिर पर मेरे उपदेश का असर नहीं होगा। अत: उन्होंने कहा कि : ''चलो युधिष्ठिर ! इस समय कुरुक्षेत्र में बाणों की शैया पर शयन करते हुए जो महान् योद्धा, वीर सोये हुऐ हैं, धरती पर जिनकी बराबरी का दूसरा कोई योद्धा नहीं मिलेगा, उन भीष्म पितामह के पास चलते हैं। वे धर्म का रहस्य भी जानते हैं और विवेक-वैराग्य भी जानते हैं। वे राजधर्म, द्विविधधर्म, दानधर्म, स्त्रीधर्म, मोक्षधर्म इत्यादि भी जानते हैं।''

क्रोध, काम, शोक, मोह, शास्त्र विरुद्ध काम करने की इच्छा, दूसरों को मारने की इच्छा, मद, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, निन्दा, दोषदृष्टि और कंजूसी ये सब दोष किससे उत्पन्न होते हैं ?

जिस प्रकार कुबेर यक्षों के साथ शोभायमान होता है, ऐसे ही युधिष्ठिर स्वर्णरथारूढ़ होकर शोभायमान हो रहे हैं। बाहर से तो बड़ा वैभव दिख रहा है लेकिन युधिष्ठिर के अन्त:करण में आसक्ति नहीं है कि ये रथ मेरे हैं और मेरे बने रहें। आसक्ति वहाँ होती है जहाँ अधर्म होता है। जहाँ धर्म होता है वहाँ संयम, सदाचार और आनन्द होता है, माधुर्य होता है। युधिष्ठिर व श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव भी अपने-अपने रथ पर आरूढ़ हो भीष्म पितामह के पास पहुँचे।

वेदज्ञ व्यासजी, नारदजी, जैमिनि, वशिष्ठ, देवल, असित, शाण्डिल्य, विश्वामित्र, हारीत, लोमश, दत्तात्रेय, शुक्र, बृहस्पति, कपिल, वाल्मीकि, परशुराम, पिप्पलाद, पुलस्त्य, पराशर, गौतम, गालवमुनि, धौम्य, मार्कण्डेय, देवस्थान, वात्स्य, अश्मक, सुमन्तु, पैल, मैत्रेय, च्यवन, सनत्कुमार, तुम्बरु, कुरु, मौदगल्य, तृणबिन्दु, वायु, संवर्त, कश्यप, पुलह, कच, विभाण्ड, ऋतु, दक्ष, मरीचि, अंगिरा, काश्य, माण्डव्य, धौम्र, कृष्णानुभौतिक, उलूक, भास्करी, पूरण आदि अनेकानेक ऋषि-महर्षि-मुनिगण भी शरशय्या पर पड़े भीष्म के इर्दगिर्द बैठे हुए थे। इन ऋषियों के बीच भीष्मजी ग्रहों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान शोभा पा रहे थे। भीष्म ने सबका सत्कार, अभिवादन कर इन शब्दों में भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की :

नमस्ते भगवन् कृष्ण लोकानां प्रभवाप्यय ।
त्वं हि कर्ता हृषीकेश संहर्ता चापराजित: ॥

''सम्पूर्ण लोकों की उत्पत्ति और प्रलय के अधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है। हृषीकेश ! आप ही इस जगत की सृष्टि और संहार करनेवाले हैं। आपकी कभी पराजय नहीं होती।''

त्वत्प्रपन्नाय भक्ताय
गतिमिष्टां जिगीषवे ।
यच्छ्रेय: पुण्डरीकाक्ष
तद्ध्यायस्व सुरोत्तम ॥

''मैं आपकी शरण में आया

हुआ आपका भक्त हूँ और अभीष्ट गति को प्राप्त करना चाहता हूँ। हे कमलनयन ! सुरश्रेष्ठ ! मेरे लिये जो कल्याणकारी उपाय हो, उसीका संकल्प कीजिये ।''

भीष्म की स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने उन्हें आदेश दिया कि : ''वीर भीष्म ! जब आप परलोक में चले जाएँगे तब सारे ज्ञान लुप्त हो जाएँगे। अत: ये सब लोग आपके पास धर्म का विवेचन कराने के लिये आये हैं। ये सत्यपरायण युधिष्ठिर बन्धुजनों के शोक से अपना सारा शास्त्रज्ञान खो बैठे हैं। अत: आप इन्हें धर्म, अर्थ और योग से युक्त यथार्थ बातें सुनाकर शीघ्र ही इनका शोक दूर कीजिये ।''

ये तेरह दोष प्राणियों के अत्यन्त प्रबल शत्रु माने गये हैं, जो यहाँ मनुष्यों को सब ओर से घेरे रहते हैं। ये सदा सावधान रहकर प्रमाद में पड़े हुए पुरुष को अत्यन्त पीड़ा देते हैं।

श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर भीष्म ने युधिष्ठिर को राजधर्म, दानधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म, द्विविधधर्म आदि का उपदेश किया। युधिष्ठिर ने भीष्म से प्रश्न किया :

यत: प्रभवति क्रोध: कामो वा भरतर्षभ।
शोकमोहौ विधित्सा च परासुत्वं तथा मद: ॥
लोभो मात्सर्यमीर्ष्या च कुत्सासूया कृपा तथा।
एतत् सर्वं महाप्राज्ञ याथातथ्येन मे वद ॥

''हे भरतश्रेष्ठ ! परम बुद्धिमान पितामह ! क्रोध, काम, शोक, मोह, विधित्सा (शास्त्र विरुद्ध काम करने की इच्छा), परासुता (दूसरों को मारने की इच्छा), मद, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, निन्दा, दोषदृष्टि और कंजूसी (दैन्यभाव) ये सब दोष किससे उत्पन्न होते हैं यह ठीक-ठीक बताइये ।''

भीष्म कहते हैं :

''युधिष्ठिर ! तुम्हारे कहे हुए ये तेरह दोष प्राणियों के अत्यन्त प्रबल शत्रु माने गये हैं, जो यहाँ मनुष्यों को सब ओर से घेरे रहते हैं। ये सदा सावधान रहकर प्रमाद में पड़े हुए पुरुष को अत्यन्त पीड़ा देते हैं। मनुष्य को देखते ही भेड़ियों की तरह बलपूर्वक उस पर टूट पड़ते हैं। नरश्रेष्ठ ! इन्हीं से सबको दु:ख प्राप्त होता है। इन्हीं की प्रेरणा से मनुष्य की पापकर्मों में प्रवृत्ति होती है। प्रत्येक पुरुष को सदा इस बात की जानकारी रखनी चाहिये। राजन् ! क्रोध लोभ से उत्पन्न होता है तथा परदोषदर्शन से बढ़ता है और क्षमा से ही रुकता है और क्षमा से ही निवृत्त होता है।

क्रोधी आदमी दूसरों के दोष देखता रहेगा तो और जलता रहेगा। दूसरों के दोष दिखें तब विचार करें कि उस जगह पर मैं होता, मेरी बुद्धि ऐसी होती तो मैं भी ऐसा ही करता। दोष उसमें हैं और हृदय अपना जलाकर अशांत बनें तो यह बेवकूफी है। इससे सावधान रहना चाहिये।

दूसरा दोष है काम। संकल्प से कामनाएँ बढ़ती हैं। किसीका मकान, बेटा, बेटी, कार आदि देखकर उसी प्रकार की प्राप्ति की कामना का दोष बढ़ेगा। कामनाओं की पूर्ति में राग होता है, इच्छावृद्धि होती है और कामनाओं की अपूर्ति में द्वेष होता है, दु:ख व अशांति होती है। कामना के दोष को मिटाने के लिये चित्त में विरक्तता लानी चाहिये कि 'आखिर यह उपभोग कब तक ? अमुक व्यक्ति के पास इतना सारा है फिर भी इसको कमी खटकती है तो जहाँ कोई कमी नहीं है, मैं उस परमात्मा की ओर अपना मन मोड़ूँ...' ऐसा चित्त को विरक्त बनाने से यह कामना का दोष निवृत्त होता है।

राजन् ! मोहरूपी दोष सब व्याधियों का मूल है। इससे भव का शूल उत्पन्न होता है। अज्ञान से मोह उत्पन्न होता है और पाप की आवृत्ति से इसकी वृद्धि होती है। विद्वानों और संतों के सान्निध्य से मोह निवृत्त होता है।

हे युधिष्ठिर ! तीसरा दोष इस जीव को सताता

है परासुत्व (दूसरों को मारने, दबोचने की इच्छा) का । यह क्रोध और लोभ से उत्पन्न होता है तथा अभ्यास से बढ़ता है एवं दया और वैराग्य से इसकी निवृत्ति होती है । दया धर्म का मूल है और विवेक करके वैराग्य लायें तो दूसरों को दबोचने-काटने का दोष शान्त होता है ।

राजन् ! मोहरूपी दोष सब व्याधियों का मूल है । इससे भव का शूल उत्पन्न-होता है । अज्ञान से मोह उत्पन्न होता है और पाप की आवृत्ति से इसकी वृद्धि होती है । विद्वानों और संतों के सान्निध्य से मोह निवृत्त होता है और जीवात्मा निर्मोही नारायण का सुख पाने में सफल हो जाता है ।

विधित्सा दोष (शास्त्र विरुद्ध कर्म करना) धर्म-विरोधी साहित्य पढ़ने से उत्पन्न होता है, संयम व सदाचार के पालन से रुकता है एवं तत्त्वज्ञान से निवृत्त होता है । जो आया सो खा लिया, जो आया सो बोल दिया, जो आया सो कर लिया- यह पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण है । इसका त्याग करना चाहिये ।

शोक दोष प्रेमी के वियोग से उत्पन्न होता है एवं विवेक जागने से निवृत्त होता है ।''

एक सज्जन की सदाचारिणी पत्नी बीमार हुई तो उन्होंने उसके इलाज पर काफी पैसा खर्च किया लेकिन प्रारब्ध कुछ ऐसा ही था कि वह बच न सकी और मर गई । उस सज्जन को बड़ा आघात पहुँचा । 'मुन्ने की माँ ! तू कितना ध्यान रखती थी मेरा ! अब तेरे बिना भी क्या जीना ?' इस प्रकार विलाप करते हुए वे रोते रहते । कोई सत्संगी मित्र उन्हें एक बार अपने साथ किसी सत्संग में ले गया । वहाँ उन्हें पता चला कि मुन्ने की माँ अगले जन्म में न जाने किसके मुन्ने की माँ बनी थी । यह संसार तो बहती हुई नदी के समान है जिसमें तिनके इकट्ठे होते हैं और बिखर जाते हैं । ऐसे करोड़ों जन्मों से हम भी किसीके पति बने थे तो कभी पत्नी बने थे । सारा संसार उसी प्रकृति का, माया का विलास-विकास है । मैं क्यों मोह में पड़ा हूँ ? भगवान में प्रीति करना ही सार है, शरीर तो मरने-मिटनेवाला है । कितना भी रोऊँगा तब भी वह वापस तो आएगी नहीं । व्यर्थ ही अपनी नींद खराब कर रहा हूँ, अपनी शांति भंग कर रहा हूँ और उसकी आत्मा को भटका रहा हूँ ।''

अब वे कहते हैं : ''मुन्ने की माँ ! तू मरनेवाली नहीं है । जो मरा है वह तेरा शरीर है । तू तो अमर आत्मा है । गुरुजी ने हमें जो ज्ञान बताया है उसी ज्ञान का आधार लेकर मैं तेरी सद्गति करना चाहता हूँ । तू आत्मा है और सनातन सत्य है । परमात्मा को याद करके तू मुक्त हो जाना । मेरे जैसे हाड़-माँस के पति तो तूने कई बदले लेकिन अब अबदल आत्मा को पहचानकर मुक्त हो जा और मैं भी परमात्मा को पहचानकर मुक्त हो जाऊँगा ।''

वे अपना कल्याण करने के रास्ते लगे और पत्नी के लिये भी शुभकामनाएँ भेजकर उसकी जीवात्मा की भी उन्नति करना चाहते हैं । उन सज्जन ने कहा कि : ''महाराज ! हमारा किसमें भला है, यह हमको पता नहीं । पत्नी चल बसी तो समझते थे कि बहुत बुरा हुआ लेकिन

''पत्नी का शरीर तो मरने-मिटनेवाला है । कितना भी रोऊँगा तब भी वह वापस तो आएगी नहीं । व्यर्थ ही अपनी नींद खराब कर रहा हूँ, अपनी शांति भंग कर रहा हूँ और उसकी आत्मा को भटका रहा हूँ ।''

भगवान जो करते हैं, अच्छे के लिये करते हैं, भले के लिये करते हैं । इस समय चाहे हमें पता चले या न चले लेकिन परमात्मा जो कुछ करते हैं, भलाई के लिये करते हैं ।

अपनी देह को 'मैं' मानकर ईश्वर का अनादर करके हाड़-माँस का आदर करने से मद दोष उत्पन्न होता है ।

इस उम्र में अगर वह नहीं चली जाती तो हम पत्नी के सौन्दर्य में सारी जिन्दगी खो देते । दूसरे जन्म में हम सुअर होते तथा वह भी सुअरी होती और एक-दूसरे से चिपकते रहते । यह तो अच्छा हुआ कि भगवान ने उसे जल्दी बुला लिया और मुझे सत्संग में पहुँचा दिया जिससे शोक चला गया और दोनों की सद्गति का रास्ता मिल गया । भगवान जो करते हैं, अच्छे के लिये करते हैं, भले के लिये करते हैं । इस समय चाहे हमें पता चले या न चले लेकिन परमात्मा जो कुछ करते हैं, भलाई के लिये करते हैं ।''

ऐसा विवेक जगने से शोक निवृत्त होता है ।

भीष्म कहते हैं : ''अगला दोष है मात्सर्य दोष, जो सत्य का त्याग करने से एवं दुष्ट का संग करने से आता है । अपने अहं को सर्वोपरी रखना ही मात्सर्य है । इसकी निवृत्ति श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा एवं संग करने से होती है ।''

भीष्म कहते हैं : ''राजन् ! अगला दोष मद दोष है । कुल का, ज्ञान का, ऐश्वर्य का मद आदि । यह अभिमान से उत्पन्न होता है । देह को 'मैं' मानकर ईश्वर का अनादर करके हाड़-माँस का आदर करने से मद दोष उत्पन्न होता है । 'मैं अमुक कुल का हूँ । मेरा कुल बढ़िया है, जाति उच्च है, अक्ल अच्छी है, मेरे पास इतना धन है' आदि मद आता है लेकिन यह सारा जिसने दिया और तुम्हारे जैसे कई उत्पन्न कर-करके जो लीन कर रहा है, उस परमात्मा पर नजर डालो तो तुम्हारा मद दोष दूर हो जाएगा । नासमझी के कारण ही तुम्हें मद होता था । यह मद दोष कुल, ज्ञान और ऐश्वर्य आदि के अभिमान से उत्पन्न होता है तथा यथार्थ स्वरूप के ज्ञान से निवृत्त होता है ।

ईर्ष्या अपनी कामना की अपूर्ति से, दूसरों के सुख को देखकर होती है । अपनी बराबरी का कोई आगे बढ़ जाता है तो ईर्ष्या होती है । अपनी कामनापूर्ति में यदि किसीने विघ्न डाला और विघ्न डालनेवाला बड़ा आदमी है तो उससे भय होता है, छोटा आदमी है तो क्रोध होता है और अपनी बराबरी का होता है तो ईर्ष्या होती है और आदमी ईर्ष्या से भीतर ही भीतर जलता रहता है । फिर चाहे वह वातानुकूलित कक्ष में बैठा हो लेकिन ईर्ष्याग्नि में वह जलता ही रहेगा । इस दोष को विवेकशील बुद्धि से निवृत्त किया जाता है । मनुष्य को चाहिये कि वह विवेकशील बुद्धि का आश्रय लेकर ईर्ष्या दोष को तुरन्त निकाले अन्यथा यह दोष सुख को सुखा देता है । ईर्ष्या व क्रोध को रक्त सुखानेवाले माने गये हैं ।

हे राजन् ! निन्दा दोष द्वेषपूर्ण झूठे वचनों से उत्पन्न होता है तथा श्रेष्ठ पुरुषों के दर्शन से, शान्ति एवं मौन का अभ्यास करने से निन्दा दोष की निवृत्ति होती है ।

असूया अर्थात् दूसरों के दोष देखने की आदत की निवृत्ति अपने चित्त में दया व जागृति के भाव लाने से होती है ।

बारहवाँ दोष मनुष्य के साथ कंजूसी का जुड़ा हुआ है जो दैन्य भाव से प्राप्त होता है कि 'इसके बिना मैं कैसे रह सकूँगा ? धन कम हो जाएगा तो मेरा क्या होगा ? इस कार्पण्य दोष की निवृत्ति धर्मनिष्ठों को, उदार आत्माओं को देखने से होती है ।

तेरहवाँ दोष लोभ भोगेच्छा करने से उत्पन्न होता है तथा भोगों की क्षणभंगुरता देखने से भोग दोष निवृत्त होता है ।''

भीष्म कहते हैं : ''राजन् ! शांति धारण करने से, भगवन्नाम जप करने से, भगवत्कथा सुनने से ये सारे दोष धीरे-धीरे क्षीण हो जाते हैं ।''

तुलसीदासजी कहते हैं :

तुलसी इस संसार में, दुःख सुख सबको होय ।
ज्ञानी काटे ज्ञान से, अज्ञानी काटे रोय ॥

❀ किसी भी वस्तु को अपना न मानना त्याग है । त्याग से वीतरागता उत्पन्न होती है । राग की निवृत्ति होने पर सब दोष मिट जाते हैं ।
❀ कठिनाई या अभाव को हर्षपूर्वक सहन करना तप है । तप से सामर्थ्य मिलता है । इस सामर्थ्य को सेवा में लगा देना चाहिए । ('दैवी संपदा' से)

लक्ष्मा जोगन

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

बम्बई-मद्रास रेल मार्ग पर एक जोगन हो गयी लक्ष्मा जोगन। पहले तो एक छोटा-सा गाँव था किन्तु अब इस जोगन के नाम पर उस गाँव का नाम पड़ गया 'लक्ष्मा नगर'। बाह्य वेश तो उसका पागल का सा था किन्तु भीतर से उसने सचमुच 'गल' को पा लिया था, रहस्य जान लिया था।

इस छोटे-से गाँव में एक वृक्ष के नीचे ही वह पड़ी रहती थी। भूख लगने पर अपना ठीकरा (बर्तन) आगे करती। कोई कुछ दे देता तो खा लेती और उसी वृक्ष के नीचे पड़ी रहती। सब लोग उसे 'पगली-पगली' कहते थे।

एक दिन वह पगली किसी पकौड़ीवाले की दुकान के आगे खड़ी रही। उसे देखकर वह पकौड़ीवाला बोल पड़ा : ''बड़ी आयी है मुफ्त का खाने...'' ऐसा कहकर उस दुष्ट ने पाँच-दस गालियाँ सुना दी।

लक्ष्मा तो गाली सुनकर किंचित् भी दुःखी न हुई, लेकिन सृष्टिकर्त्ता से यह बात सहन न हुई। जो भगवान में रमण करता है, शीलवान है, वह तो सह लेता है किन्तु जिसका वह भजन करता है, जिसके लिए वह जीता है, उस परमेश्वर से सहा नहीं जाता। जैसे बच्चे को तुम जरा-सी भी थप्पड़ मारो तो बच्चा सह लेगा लेकिन बच्चे के माँ-बाप को ऐसा गुस्सा आता है कि तुम्हारी खबर ले लेंगे। बच्चे को यदि तुम प्यार करो तो उसके माँ-बाप भी तुम्हारे हो जाते हैं। ऐसे ही जो भगवान का भजन करते हैं वे तो सह लेते हैं परन्तु भगवान से अपने भक्त का अनादर सहा नहीं जाता। भगवान स्वयं उसको सबक सिखाते हैं।

भगवान की प्रेरणा से आँधी-तूफान चलने लगा। उस आँधी-तूफान में उस दुकानदार के गोल-गप्पे, पेटीस, पकौड़े कहाँ उड़ गये, कचौड़ियाँ कहाँ उड़ गयीं कुछ पता ही नहीं चला। देखते ही देखते उसका कढ़ावा रेती से भर गया। फिर भी वह दुकानदार एवं अन्य लोग यह न जान सके कि भक्त के अनादर से यह फल मिला है।

कुछ दिनों के बाद लक्ष्मा पुनः उसी बाजार से गुजरी। उसका वेश पागलों का सा रहता था, कपड़े भी मैले थे। लोग उसका नाम नहीं जानते थे अतः उसे पगली कहते थे। एक दुकान पर गर्म-गर्म जलेबी उतर रही थी। उसने जलेबी की ओर इशारा किया कि मुझे दो।

जलेबीवाला थोड़ा भगत था। उसने सोचा कि क्या पता किस वेश में नारायण मिल जायें। यह तो भगवान का ही रूप है, फकीर जो है ! उसने दो-चार जलेबी दे दी और प्रणाम करते हुए कहा : ''जाओ माँ ! मौज करो।''

अब वह तो मौज क्या करे ? सृष्टिकर्त्ता को मौज आ गयी। उसकी दुकान पर लाईन लग गई। जलेबी, मोहनथाल आदि सब देखते ही देखते बिक गये और पूरी दुकान खाली हो गयी। फिर दुकानदार ने समझा कि अभी-अभी पगली को जलेबी दी और इसीसे दुकान पर न जाने कौन-से ग्राहक आये और सबकी सब मिठाइयाँ बिक गई।

लक्ष्मा तो गाली सुनकर किंचित् भी दुःखी न हुई, लेकिन सृष्टिकर्त्ता से यह बात सहन न हुई। जो भगवान में रमण करता है, शीलवान है, वह तो सह लेता है किन्तु जिसका वह भजन करता है, जिसके लिए वह जीता है, उस परमेश्वर से सहा नहीं जाता।

अब आसपास के दुकानदार लोग भी समझ गये कि पकौड़ीवाले ने अनादर किया तो उसका कढ़ावा रेती से भर गया और इसने जलेबी देकर भक्त का आदर किया तो भगवान की कृपा बरसने लगी । अगर भगवान को रिझाना है तो भगवान के प्यारों की सेवा कर लो । भगवान का कोप पाना है तो भगवान के प्यारे संतों को सता कर देख लो ।

आँधी-तूफान में उस दुकानदार के गोल-गप्पे, पेटीस, पकौड़े कहाँ उड़ गये, कचौड़ियाँ कहाँ उड़ गयीं कुछ पता ही नहीं चला । देखते ही देखते उसका कढ़ावा रेती से भर गया ।

गाँव में चारों ओर हवा फैल गई कि अरे ! पागल के वेश में यह कोई साधारण स्त्री नहीं है । यह पगली तो पहुँची हुई संत है । फिर तो लोग उसके दर्शन के लिए आने लगे । उसके नाम से मनौतियाँ मानने लगे । जो भगवान का सच्चा भक्त होता है उसके आगे मनौती मानने से मनोकामना पूरी हो जाती है । भगवान का भक्त कोई साधारण मनुष्य नहीं होता । भगवान के भक्त जहाँ जहाँ नाचे थे, ग्वाल और गोपियाँ जहाँ नाचे थे, उनकी चरणरज पड़ी थी उस वृंदावन की भूमि पावन हो गयी और वहाँ कि मिट्टी गोपीचंदन कहलायी । वह चरणरज जिस रज को लगी वह रज भी अब हट गयी, बिक गयी । अभी-भी वहाँ से मिट्टी लाकर लोग गोपीचंदन बनाते हैं । पाँच हजार वर्ष पहले के परमाणु तो उठ गये लेकिन वे परमाणु जिस परमाणु को लगे, वह मिट्टी जिस मिट्टी को लगी वह मिट्टी भी अब तो हट गयी होगी । फिर भी लोग अभी तक उस मिट्टी को वृंदावन का गोपीचंदन मानकर ललाट पर लगाते हुए अपने को भाग्यशाली मानते हैं... धन्यता का अनुभव करते हैं ।

जहाँ भगवान का कीर्तन होता है, भगवान का ध्यान होता है वहाँ का तो कण-कण पवित्र हो जाता है और जहाँ भगवद्‌भक्त स्वयं होते हैं वहाँ का तो कहना ही क्या ?

जहाँ भगवान का कीर्तन होता है, भगवान का ध्यान होता है वहाँ का तो कण-कण पवित्र हो जाता है और जहाँ भगवद्‌भक्त स्वयं होते हैं वहाँ का तो कहना ही क्या ?

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था।
वसुंधरा पुण्यवती च येन ॥

कुल पवित्र हो जाता है, जननी कृतार्थ हो जाती है और वहाँ की धरा पुण्यशाली हो जाती है ।

लक्षम्मा के दर्शन करने से एवं मनौती मानने से लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं तो लोग उसे पगली कहने से डरने लगे । उसका आदर करने से व्यापार अच्छा चलता था । कितने ही व्यापारी उसके दर्शन करके फिर अपनी दुकान खोलते थे । सब बोलने लगे कि 'ये तो लक्ष्मीजी हैं लक्ष्मीजी ।' कोई उसे माताजी कहे तो कोई लक्ष्मीजी कहे । फिर गाँव के लोगों ने कहा : 'लक्ष्मी माँ ।' 'लक्ष्मी माँ... लक्ष्मी माँ...' कहते-कहते अपभ्रंश हो गया 'लक्षम्मा । लोग उन्हें जानने लगे किन्तु लक्षम्मा ने अपने को छुपाकर रखा । वही मैले कपड़े, गुदड़ी और उसी वृक्ष के नीचे निवास ।

लक्षम्मा ने आकाश की तरफ देखा, बुढ़िया को आश्वासन दिया और अपने वही पुराने वृक्ष के नीचे आकर योग-शक्ति से बालक को जीवित करके सदा के लिए अपने शरीर को छोड़कर भगवान में समा गयी ।

एक रात्रि को कहीं दूर के किसी झोंपड़े से आवाज आ रही थी : ''माँ ! बचाओ... बचाओ... तुम्हारे सिवा मेरा कोई नहीं है...''

वह आवाज सुनकर लक्षम्मा मध्यरात्रि को उठी और जहाँ से रुदन की आवाज आ रही थी वहाँ गयी । वहाँ पहुँचकर देखा तो एक बुढ़िया का इकलौता बेटा मर गया है,

(शेष पृष्ठ २० ऊपर)

कथाप्रसंग

बेगम का रूठना

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मानव में अथाह सामर्थ्य है । जरूरत है तो बस, उसके इस सामर्थ्य को विकसित करने के लिए उचित मार्गदर्शन और उसके पुरुषार्थ की । मनुष्य को सबसे अधिक सही मार्गदर्शन सत्संग से ही मिलता है ।

बीरबल बचपन से ही सत्संग एवं सारस्वत्य मंत्र का जप नियमित रूप से करते थे । तभी तो बाल्यकाल से ही उनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि अकबर जैसे सम्राट भी दाँतों तले उँगली दबा लेते थे । अलग-अलग ढंग से बीरबल की परीक्षाएँ होती थीं किन्तु वे सदैव सब कसौटियों में खरे उतरते थे । यह उनके सत्संग का एवं उनकी साधना और बुद्धिपूर्वक किये गये अथक पुरुषार्थ का ही चमत्कार था ।

> *मानव में अथाह सामर्थ्य है । जरूरत है तो बस, उसके इस सामर्थ्य को विकसित करने के लिए उचित मार्गदर्शन और उसके लिए पुरुषार्थ की । मनुष्य को सबसे अधिक सही मार्गदर्शन सत्संग से ही मिलता है ।*

एक बार अकबर की बेगम के भाई को दूसरे मंत्रियों ने अपने साथ मिला लिया और कहा :

''तू बीरबल को हटवा दे तो हम तुझे बीरबल की जगह पर रखवा देंगे, मंत्री बनवा देंगे ।''

बेगम का वह भाई बेगम को रोज कहने लगा :

''बहन ! कुछ भी कर, मगर बीरबल को हटवा दे ।''

बेगम ने अकबर पर दबाव डाला : ''बीरबल को निकाल दो । वह अच्छा आदमी नहीं है ।''

अकबर : ''उसका कोई कसूर तो बता ?''

बेगम : ''बस, हटा दो ।''

अकबर : ''ऐसे कैसे हटा दूँ ? राज्य में उथल-पुथल मच जायेगी ।''

पहले के लोगों में समझ होती थी । आज कल जैसा नहीं कि आपस में लड़कर मरते रहें । नहीं । उनके मतानुसार, अन्याय नहीं सहना चाहिए । अन्याय करना, जुल्म करना तो पाप है - जुल्म सहना दुगना पाप है ।

अकबर : ''बीरबल का कोई कसूर नहीं है और मैं उसे निकाल दूँ तो हिन्दुओं की रग-रग बलवा पुकार उठेगी । लोग मुझे अन्यायी राजा साबित कर देंगे । बीरबल का कोई कसूर तो बता ताकि मैं उसे निकाल सकूँ ।''

बेगम ने सोचा कि कसूर तो क्या बताऊँ ? अत: बोली : ''अभी तो आप राजदरबार में जाइये । मैं फिर बताऊँगी ।''

बेगम ने एक युक्ति खोज ली । बीरबल को तो पता था कि ये सब लोग मेरे पीछे पड़े हुए हैं । बीरबल ने अपनी कुछ दासियों को जासूस के रूप में राजमहल में रख दिया था । राजमहल में जो बात होती थी, वह बीरबल के कान तक पहुँच जाती थी । बीरबल भी बड़ी चतुराई से सावधान रहते थे । उन्होंने देखा कि इस बार मुझे हटाने के लिए बेगम साहिबा का उपयोग हो रहा है । ठीक है, कोई बात नहीं, देख लेंगे । यह सोचकर वे निश्चिंत रहे ।

बेगम ने अकबर से कहा :

''आप राजदरबार में जाकर बीरबल को बुलाइये और उससे बोलिये कि बेगम रूठ गयी है । उसे मनाकर राजदरबार में ले आओ । वह मनायेगा और मैं मानूँगी नहीं और राजदरबार में मुझे आना नहीं है । यह तो आप और हम समझेंगे । फिर उसको कहना कि 'एक

बेगम को नहीं मना सकता है तो इतनी जनता को कैसे मनायेगा ?' ऐसा कहकर, धक्का मारकर उसको निकाल दीजिएगा ।''

अकबर : ''आजमा ले, जरा तू भी मजा ले ले । मैं भी देख लूँ । बीरबल के आगे हर बार हम लोगों को तो मजा ही मिलता है । अच्छा, मैं जाकर बीरबल को भेजता हूँ मगर तू आना मत ।''

बेगम : ''नहीं नहीं, मैं तो अभी से रुठ जाती हूँ । बाल खोलकर, सिर कूटकर बैठ जाऊँगी । वह हाथ पकड़कर तो नहीं ले जा सकता क्योंकि अपना मंत्री है, अपने आधीन है ।''

बेगम को पता नहीं था कि हाथ की शक्ति से बुद्धि की शक्ति ज्यादा होती है ।

अकबर ने राजदरबार में जाकर बीरबल से कहा : ''बीरबल ! जाओ राजमहल में । बेगम किसी कारण से रूठी हुई है, मेरा मानती नहीं है । समझा-बुझाकर उसको राजदरबार में ले आओ ।''

बीरबल : ''जो आज्ञा ।''

बीरबल ने बेगम के रूठने की सारी बात दास-दासियों से जान ली । उन्होंने उपाय सोच लिया और दास-दासियों को सब समझा दिया । बीरबल बेगम के पास जैसे ही पहुँचे कि तुरन्त एक दासी दौड़ती-दौड़ती आयी और हाँफती-हाँफती कहने लगी :

''बीरबलजी ! बीरबलजी ! जहाँपनाह आपको बुला रहे हैं । उन्होंने कहा है कि बेगम को नहीं मनाना है । अरब की एक सुन्दरी के बारे में बातचीत चल रही थी उस सुन्दरी के बिना मैं नहीं रह सकता । अरब से एक सन्देशवाहक आया है अतः आप जल्दी आओगे तभी काम होगा ।''

बीरबल बेगम के पास जैसे ही पहुँचे कि तुरन्त एक दासी दौड़ती-दौड़ती आयी और हाँफती-हाँफती कहने लगी : ''बीरबलजी ! बीरबलजी ! जहाँपनाह आपको बुला रहे हैं ।''

बीरबल : ''बात तो सच्ची है । ये बेगम साहिबा आज नहीं मानती तो कल मान जायेंगी लेकिन देखना पड़ेगा कि उस सुन्दरी को कोई और राजा न ले जाये । वह हमारे शहनशाह के ही काबिल है, बड़ी सुन्दर है । उसका स्वभाव भी अच्छा है । उसे तो अपने राज्य में होना ही चाहिए ।''

बेगम यह सुनकर चौंक पड़ी : ''कौन है वह चुड़ैल ?''

बीरबल : ''माताजी ! अब सुनने की या यहाँ रुकने की मुझे कोई जरूरत नहीं है । मुझे जहाँपनाह बुला रहे हैं । मैं जाता हूँ ।''

ऐसा कहकर बीरबल तुरन्त राजमहल की सीढ़ियाँ उतरकर चल पड़े । बीरबल आगे-आगे जा रहे हैं, बेगम पीछे-पीछे । बेगम कहती है : ''रुको, सुनो ।

किन्तु बीरबल बोलते हैं : ''मेरे पास अब वक्त नहीं है । बात हाथ से चली जायेगी ।''

बीरबल आगे-आगे दौड़े जा रहे हैं और वह बेगम पीछे-पीछे भाग रही है । जिसने कभी गलीचे से नीचे पैर नहीं रखा था वह आज पत्थरों पर नंगे पैर भागे जा रही है । पत्थरों पर दौड़ते-दौड़ते ठोकर लगने से उसके दाँयें पैर के अंगूठे से रक्त की धारा बह चली, परन्तु उसे पता न चला क्योंकि उसके भीतर ऐसा भाव था कि न जाने कौन-सी औरत आ जायेगी और मेरा प्रभाव और अधिकार चला जायेगा ।

बीरबल आगे-आगे दौड़े जा रहे हैं और वह बेगम पीछे-पीछे भाग रही है । जिसने कभी गलीचे से नीचे पैर नहीं रखा था वह कोमलांगी आज पत्थरों पर नंगे पैर भागे जा रही है ।

बीरबल पहुँचे राजदरबार में । पीछे-पीछे बेगम भी हाँफती-हाँफती पहुँची । अकबर सोचने लगा कि यह क्या ? यह तो बोलती थी कि 'मैं नहीं आऊँगी, ऐसी रूठूँगी कि बीरबल से भी नहीं मानूँगी । फिर बीरबल को निकाल देना ।' किन्तु यह तो नंगे पैर दौड़कर आ गयी !

अकबर ने पूछा : ''आखिरकार मामला क्या है बेगम साहिबा ! तुम इतनी हाँफती-हाँफती क्यों चली आ रही हो ? कोई अत्यावश्यक काम आ गया क्या ? क्यों तुम्हें नंगे पैर चले आना पड़ा ?''

बेगम : ''मैंने सुना कि आप एक नई बेगम ला रहे हैं । भला मेरे रहते आपको दूसरी बेगम की जरूरत क्यों आ पड़ी ?''

अकबर एक क्षण के लिए चौंके और बीरबल की ओर देखा। बीरबल मुस्करा पड़े और बोले :

''जहाँपनाह ! बेगम साहिबा को लाने का इसके अलावा और कोई चारा ही न था ।''

बेगम तो देखती ही रह गई कि 'यहाँ तो कोई सुन्दरी नहीं है । केवल मुझे राजदरबार में बुलाने के लिए ही यह नाटक रचा था ।'

तब उसे पता चला कि बीरबल तो हम दोनों के उस्ताद हैं क्योंकि वे पक्के गुरु के चेले हैं ।

अकबर ने कहा : ''देखा बुद्धिमान बीरबल की दुश्मनी का फल ?''

जिसके जीवन में सत्संग है, सद्गुरु का सान्निध्य है और सद्गुरु के बताये मार्ग पर जो चला है उसके लिए जीवन में किसी भी परिस्थिति का सामना करना असंभव नहीं है। जो समस्त कसौटियों से पार होता है उसके लिए सब आसान हो जाता है । फिर चाहे कोई भी व्यक्ति उसके लिए ईर्ष्यावश षड़यंत्र भी रचे, किन्तु उसका बाल तक बाँका नहीं कर सकता तो उसे मंत्री-पद से कैसे हटा सकता है ?

बीरबल के जीवन से हमें यही सीखने को मिलता है कि अपनी बुद्धि का विकास करें, बुद्धि विकसित हो उसके लिए संतों का संग करें और पुरुषार्थ करें । फिर जीवन की प्रत्येक विषम परिस्थिति में से भी मार्ग निकाल पाना हमारे लिए सरल हो जायेगा हम चित्त की शांति और समता पाकर चैतन्यस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति करके मुक्त हो सकेंगे। जन्म-मरण के बन्धन से सदा के लिए छूट जायेंगे ।

❀

जिसके जीवन में सत्संग है, सद्गुरु का सान्निध्य जिसे मिल चुका है और सद्गुरु के बताये मार्ग पर जो ठीक से चला है उसके लिए जीवन में किसी भी परिस्थिति का सामना करना असंभव नहीं है ।

संग्रह का बोझ

संग्रह अधिक अच्छा नहीं
यह मोक्ष-पथ में आड़ है ।
कैसे भला तू भग सके
सिर पर लदा जो भार है ॥

जीवन में संग्रह यदि अधिक होता है तो परमात्म- प्राप्ति का पथ कठिन हो जाता है ।

एक सेठ किसी फकीर के चरणों में आकर कहने लगे :

''बाबाजी ! मुझे कैसे भी करके शान्ति प्रदान कीजिए ।''

संत तो दयालु होते हैं, कृपानिधान होते हैं। उन आत्मारामी फकीर ने कहा :

''शांति तो तुम्हारा स्वभाव है, शीतलता तो तुम्हारा स्वभाव है ।''

सेठ बोले : ''नहीं बाबाजी ! मैं बहुत दुःखी हूँ। यद्यपि ऐहिक संपत्ति तो मेरे पास बहुत है किन्तु भीतर कोई शांति नहीं है, कोई तसल्ली नहीं है ।''

ऐसा कहकर उन्होंने अपने सब दुःख सुना दिये । बाबा ने देखा कि यह तो भीतर से बहुत बीमार है । क्या किया जाये ? फिर कुछ सोचकर बाबा ने कहा :

''यदि परमात्मा का दर्शन करना है, सुख पाना है, शांति पानी है तो कल मेरे साथ घूमने चलना ।''

सेठ : ''बाबाजी ! संतों के साथ तो एक कदम चलना भी अच्छा है । मेरे बहुत सौभाग्य होंगे । मैं अवश्य आपके साथ चलूँगा ।''

दूसरे दिन सुबह में बाबाजी और सेठ घूमने के लिए चल पड़े । रास्ते में बाबाजी ने कुछ कंकड़-पत्थर एकत्रित किये और एक पोटली बाँधी । चलते-चलते जब वे एक पहाड़ी पर चढ़ने लगे तब वह पोटली सेठ को देते हुए कहा : ''इसे उठाकर चलो ।''

सेठ ने पोटली सिर पर ली और चलने लगे । पत्थरों का पोटला भारी था और सेठ को चलने का

अभ्यास भी नहीं था । थोड़ा-सा ही चलने पर सेठ बोले :

''बाबाजी ! आप तो तेजी से जा रहे हैं किन्तु मैं नहीं चल सकता ।''

बाबा ने कहा : ''थोड़े पत्थर कम कर दो ।''

बाबाजी के कहने पर सेठ ने थोड़े पत्थर कम कर दिये और पहाड़ी पर चढ़ने लगे । किन्तु थोड़ी दूर चलने पर पुनः सेठ थक गये और बोले : ''बाबाजी ! अभी-भी बोझा लग रहा है ।''

जितना-जितना इंसान नीचे के केन्द्रों में होता है, हल्की बुद्धि में होता है उतना-उतना उसके पास बहुत सामग्री होते हुए भी असंतोष रहता है और जैसे-जैसे वह ऊपर उठने लगता है तो उसे थोड़ी सामग्री भी ज्यादा लगने लगती है, बोझ लगने लगती है ।

बाबा : ''और थोड़े पत्थर गिरा दो ।''

बाबाजी के कहने पर सेठने थोड़े पत्थर और गिरा दिये । किन्तु कुछ देर बाद पुनः वे कहने लगे : ''बाबाजी ! ज्यों-ज्यों ऊपर जाते हैं त्यों-त्यों थोड़ा भी ज्यादा लग रहा है ।''

ज्यों-ज्यों व्यक्ति ऊपर उठता है त्यों-त्यों थोड़ा भी ज्यादा लगता है और ज्यों-ज्यों मनुष्य नीचे गिरता है त्यों-त्यों ज्यादा भी थोड़ा लगता है । जितना-जितना इंसान नीचे के केन्द्रों में होता है, हल्की बुद्धि में होता है उतना-उतना उसके पास बहुत सामग्री होते हुए भी असंतोष रहता है और जैसे-जैसे वह ऊपर उठने लगता है तो उसे थोड़ी सामग्री भी ज्यादा लगने लगती है, बोझ लगने लगती है ।''

इच्छा-वासनाओं को, जैसे-जैसे छोड़ते जाओगे वैसे-वैसे ही तुम हल्के होते जाओगे और अंत में परमात्मप्राप्तिरूपी शिखर तक पहुँच जाओगे, परमात्मा के द्वार तक पहुँच जाओगे ।

पहाड़ी पर चढ़ते-चढ़ते जब आधे से ज्यादा ऊपर पहुँच गये तब सेठ बोलते हैं : ''बाबाजी ! अब तो नहीं उठ रहे ।

बाबाजी : ''और कम कर दो ।''

इस प्रकार पत्थर कम करते-करते केवल एक ही पत्थर सेठ के पास बचा । आखिरकार जब शिखर के करीब पहुँचने लगे तो एक छोटा-सा पत्थर भी भारी लगने लगा । तब बाबाजी बोले : ''इसे भी फेंक दो ।''

सेठ ने पत्थर फेंक दिया और बोले : ''हाँ ! अब हल्का हो गया ।''

फिर वे जल्दी ही शिखर तक पहुँच गये ।

बाबाजी ने शिखर पर पहुँच कर कहा : ''बस, जैसे-जैसे तुम इन पत्थरों को फेंककर हल्के होते गये और शिखर तक पहुँच गये, ऐसे ही यदि शांति तक पहुँचना है, परम सुख तक पहुँचना है तो छोड़ दो इच्छा-वासनाओं को, मेरे-तेरे को । जैसे-जैसे छोड़ते जाओगे वैसे-वैसे ही तुम हल्के होते जाओगे और अंत में परमात्मप्राप्तिरूपी शिखर तक पहुँच जाओगे, परमात्मा के द्वार तक पहुँच जाओगे ।''

वैभव का भूषण सुजनता है । वाणी का संयम, अपने मुख से शौर्य-पराक्रम का वर्णन न करना यह शौर्य-पराक्रम की शोभा है । ज्ञान का भूषण शान्ति है । नम्रता शास्त्र के श्रवण को शोभा देती है । सत्पात्र को दान देना दान की शोभा है । क्रोध न करना तप की शोभा है । क्षमा करना समर्थ पुरुष की शोभा है । निष्कपटता धर्म को शोभा देती है । ('जीवन विकास' से)

स्वास्थ्य के लिए सावधानियाँ

मनुष्य के स्वास्थ्य पर मन:स्थिति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है । मन को किसी भी समय चिन्ता, क्रोध, ग्लानि, घृणा इत्यादि के दलदल में फँसने नहीं देना चाहिये क्योंकि ये मानसिक विकार शरीर की नाड़ियों में भारी विक्षोभ उत्पन्न कर देते हैं और रक्त को विषैला बना देते हैं । भोजन के समय तो मन का प्रसन्न होना सर्वथा आवश्यक है ।

प्रोफेसर गेट्स नामक एक वैज्ञानिक ने इस संबंध में जो प्रयोग किये हैं, वे बड़े मूल्यवान हैं । प्रोफेसर गेट्स ने मनुष्य की भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं में से निकलनेवाली श्वासों की वायु को लेकर बर्फ द्वारा ठंडी की हुई नलियों में एकत्र किया और यह बतलाया कि मनुष्य जब साधारण अवस्था में हो, मन में कोई असाधारण विकार न हो तो उन श्वासों से रंगहीन (रंग रहित) द्रव एकत्रित होता है और यदि मन क्रोध की अवस्था में हो तो इस द्रव का रंग भूरा-सा होता है । दु:ख की अवस्था में निकलनेवाली श्वासों से खाकी रंग का एवं पश्चाताप की अवस्था में गुलाबी रंग का द्रव एकत्रित होता है । भूरे, खाकी और गुलाबी रंग के ये पदार्थ इतने विषैले सिद्ध हुए कि सुअर के बच्चे को इनका टीका लगाने पर उसकी मृत्य हो गयी । घृणा तथा क्रोध की अवस्था में एक घंटे में मनुष्य के श्वास द्वारा इतना विषैला द्रव निकलता है कि उससे बीस व्यक्ति मर सकते हैं । इसके विपरीत आनन्द, उत्साह, प्रेम, प्रसन्नता की अवस्था में श्वास द्वारा जो द्रव निकलता है, वह बड़ा शक्ति देनेवाला होता है ।

वैज्ञानिक गेट्स के इस कथन से सिद्ध होता है कि भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाएँ मानव-स्वास्थ्य पर कितना गंभीर प्रभाव डालती हैं । अतएव प्रथम तो क्रोध, घृणा, चिन्ता, सन्ताप इत्यादि से सर्वदा ही बचना चाहिये, परन्तु भोजन के समय तो अवश्यमेव इनको दूर धकेल देना चाहिये । अन्यथा ये भोजन में विष डाल देंगे ।

भोजन के समय स्वर का ध्यान रखना भी लाभदायक है । जब चन्द्र स्वर (वाम नासिका से वायु) चल रहा हो तो जठराग्नि मन्द होती है तथा सूर्य स्वर (दाँयीं नासिका से वायु) चलने पर जठराग्नि प्रबल रहती है अतएव भोजन के पूर्व देख लीजिये कि सूर्य स्वर चलता है या नहीं । चन्द्र स्वर अर्थात् नाक के बाँयें नथुने से श्वास चलना और सूर्य स्वर अर्थात् दाँयें नथुने से श्वास चलना ।

आहार के सम्बन्ध में एक और महत्त्वपूर्ण बात छ: रसों के सम्बन्ध में है । 'चरक संहिता' के विमानस्थान के पहले अध्याय में बतलाया गया है कि रस छ: हैं : मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय । इन रसों का ठीक प्रकार से उपयोग करने पर वे शरीर का पालन-पोषण करते हैं और उल्टे उपयोग से दोषों को बढ़ाते हैं ।

दोष तीन माने गये हैं : वात, पित्त व कफ । वात-पित्त-कफ ठीक हों तो शरीर के उपकारक होते हैं और विकार को प्राप्त हुए हों तो निश्चय ही नाना प्रकार के विकारों से शरीर को दु:खित करते हैं ।

कटु, तिक्त और कषाय रस वात को पैदा करते हैं । मधुर, अम्ल और लवण वात का शमन करते हैं । कटु, अम्ल और लवण पित्त को पैदा करते हैं तथा मधुर, तिक्त और कषाय पित्त को शांत करते हैं । मधुर, अम्ल और लवण कफ को पैदा करते हैं तथा कटु, तिक्त और कषाय कफ को शान्त करते हैं ।

मनुष्य-शरीर को योग के अंगों के अनुकूल बनाने के लिये आयुर्वेद के इस तत्त्व को भली प्रकार समझकर प्रयोग में लाने से आपका स्वास्थ्य तथा शरीर नीरोग होकर योग तथा ईश्वरप्रीत्यर्थ कर्म करने में अधिकाधिक

योग्य बन जाएगा ।

इसी प्रकार शरीर की थकावट दूर करने की एक अद्‌भुत शक्ति निद्रा से प्राप्त होती है । निद्रा को विष्णु की माया भी कहा है । न इसका कोई रंग है न रूप, यह न हाथ से स्पर्श की जा सकती है, न जिव्हा से चखी जा सकती है और न नासिका से सूँघी जा सकती है । इसका स्वाद मन द्वारा बिना किसी बाह्य इन्द्रिय की सहायता के लिया जा सकता है । लोभ, काम इत्यादि के वश होकर निद्रा का अपमान नहीं करना चाहिये । जिन्हें अनिद्रा का रोग हो उन्हें शरीर पर तेल मलकर, उबटन लगाकर स्नान करना चाहिये । शरीर पर तैल-मर्दन करके हाथ-पाँव धीरे-धीरे दबाना चाहिये । इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि मन में जिस बात का संताप या चिन्ता हो उसे भी मन से निकाल दिया जावे ।

बालकों के स्वास्थ्य के लिये भी इस बात का ध्यान रखा जाये कि वे आलू, टमाटर, कच्ची सब्जियाँ, चाय, गुड़, बर्फ, फ्रीज का पानी, बासी आहार, जूठा आहार, तला हुआ आहार, बार-बार खाना, भूख से अधिक खाना, अधिक मीठा-नमक-खटाई-मिर्च खाना, देर रात तक टी. वी. देखना, देर से सोना, सूर्योदय के बाद जागना, पावडर का दूध पीना आदि दुर्गुणों से वे सदा के लिये बचे रहें ।

स्वास्थ्य के इन नियमों का पालन करने से शरीर सदैव स्वस्थ एवं तन्दुरुस्त तथा मन प्रसन्न बना रहता है और मन की प्रसन्नता ही ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है ।

❀

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों एवं एजेन्ट बन्धुओं से अनुरोध

(१) 'ऋषि प्रसाद' की सदस्यता के लिए नई सदस्यता शुल्क के अनुसार भेजे गये मनीऑर्डर/ड्राफ्ट ही स्वीकार किये जाएँगे, पुरानी दर के नहीं ।
(२) अपनी सदस्यता का नवीनीकरण कराते समय मनीऑर्डर फार्म पर 'संदेश के स्थान' पर 'ऋषि प्रसाद' के लिफाफे पर आया हुआ आपके पते वाला लेबल चिपका दें । (३) 'पाने वाले का पता' में 'ऋषि प्रसाद सदस्यता हेतु' अवश्य लिखें । (४) पते में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की सूचना प्रकाशन तिथि से एक माह पूर्व भिजवावें अन्यथा परिवर्तन अगले अंक से प्रभावी होगा । (५) 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय से पत्रव्यवहार करते समय कार्यालय के पते के ऊपर के स्थान में संबंधित विभाग का नाम अवश्य लिखें । ये विभिन्न विभाग इस प्रकार हैं :

(A) अनुभव, गीत, कविता, भजन, संस्था समाचार, फोटोग्राफ्स एवं अन्य प्रकाशन योग्य सामग्री 'सम्पादक-ऋषि प्रसाद' के पते पर प्रेषित करें । **(B)** पत्रिका न मिलने तथा पते में परिवर्तन हेतु 'व्यवस्थापक-ऋषि प्रसाद' के पते पर संपर्क करें । **(C)** साहित्य, चूर्ण, कैसेट आदि प्राप्ति हेतु 'श्री योग वेदान्त सेवा समिति के पते पर संपर्क करें । **(D)** साधना संबंधी मार्गदर्शन हेतु 'साधक विभाग' पर लिखें । **(E)** स्थानीय समिति की मासिक रिपोर्ट, सत्प्रवृत्ति संचालन की जानकारी एवं समिति से संबंधित समस्त कार्यों के लिये 'अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति' के पते पर लिखें । **(F)** स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त प्रकार के पत्रव्यवहार 'वैद्यराज, सांई लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहाँगीरपुरा, सूरत (गुजरात) के पते पर करें ।

❀ अपने कर्त्तव्य को ठीक से करो । कार्य पूरी शक्ति लगाकर करो । तुमने कितना बढ़िया काम किया यह मत देखो किन्तु इससे भी और बढ़िया कर सकते हो कि नहीं यह सोचो । अपनी योग्यता का और विकास करो ।

❀ अपने नामरूप व सारे जगत् के नामरूप का बाध करके सर्वज्ञ आत्म-स्वरूप की प्रतीति करते रहना यह श्रेष्ठ योग है ।

मंत्र द्वारा मृतदेह में प्राणसंचार

दिनांक : ११ जुलाई १९९४ की घटना है । मैं आमेट (राज.) योग वेदान्त सेवा समिति के सदस्यों के साथ कुछ कार्यवश अहमदाबाद आश्रम आने के लिये उस दिन प्रातः जीप में रवाना हुआ था । उदयपुर पार कर के हमारी जीप ६०-७० कि.मी. प्रतिघंटा की रफ्तार से अहमदाबाद की ओर दौड़ी जा रही थी । मध्यान्ह के ठीक बारह बजे हमारी जीप ने किसी तकनीकी त्रुटि के कारण नियंत्रण से बाहर होकर तीन पल्टियाँ खाई और अन्त में मेरा पूरा शरीर जीप के नीचे दब गया । किसी तरह मुझे बाहर निकाला गया । एक तो दुबला-पतला शरीर और ऊपर से पूरी जीप का वजन ऊपर आ जाने के कारण मेरे शरीर के प्रत्येक हिस्से में अत्यंत पीड़ादायक असह्य दर्द होने लगा ।

हमारी जीप अहमदाबाद की ओर दौड़ी जा रही थी । मध्यान्ह के ठीक बारह बजे हमारी जीप ने किसी तकनीकी त्रुटि के कारण नियंत्रण से बाहर होकर तीन पल्टियाँ खाई और अन्त में मेरा पूरा शरीर जीप के नीचे दब गया ।

मुझे पहले तो केसरियाजी और वहाँ स्वास्थ्य लाभ न होने से तुरन्त उदयपुर के अस्पताल में भर्ती कराया गया । ज्यों-ज्यों उपचार किया गया, रोग बढ़ता ही गया क्योंकि चोट बाहर नहीं, शरीर के भीतरी हिस्सों में लगी थी और भीतर तक डॉक्टरों का कोई उपचार नहीं पहुँच पा रहा था ।

जीप के नीचे दबने से मेरा सीना व पेट विशेष प्रभावित हुए थे और हाथ-पैर में काँच के टुकड़े भरा गये थे । दर्द के मारे मुझे साँस लेने में भी कष्ट हो रहा था, आक्सीजन दिये जाने के बाद भी मेरा दम घुट रहा था और मृत्यु की घड़ियाँ नजदीक दिखाई पड़ने लगी । अन्ततः वह स्थिति भी आ पहुँची जब डॉक्टरों ने मुझे मरणासन्न स्थिति में पहुँचा देखकर मृत घोषित कर दिया । मेरा मृत्यु प्रमाणपत्र (Death Certificate) बनाने की तैयारियाँ की जाने लगी व मेरे निर्जीव शरीर को घर ले जाने को कहा गया ।

इसके पूर्व मेरा मित्र पूज्य बापू (संत श्री आसारामजी महाराज) से फोन पर मेरी इस स्थिति के संबंध में बात कर चुका था । प्राणीमात्र के परम हितैषी दयालु स्वभाव के पूज्य बापू ने उसे एक गुप्त मंत्र प्रदान करते हुए कहा था कि पानी में निहारते हुए इस मंत्र का, एक सौ आठ बार (एक माला) जप कर वह पानी मनोज एवं एक्सीडेन्ट में घायल अन्य लोगों को भी पिला देना । जैसे ही वह अभिमंत्रित जल मेरे मुँह में डाला गया, मेरे शरीर में हलचल के साथ वमन हुआ । वार्डबॉय ने दौड़कर डॉक्टरों को खबर की तो सभी डॉक्टर मेरी ओर दौड़ पड़े एवं इस अद्भुत चमत्कार से विस्मित होकर उन्होंने मुझे तुरन्त ही विशेष मशीनों के नीचे ले जाकर लिटाया । मेरे गहन चिकित्सकीय परीक्षण के बाद डॉक्टरों को पता चला कि जीप के नीचे दबने से मेरा पूरा खून काला पड़ गया था तथा नाड़ी (पल्स), हृदयगति व रक्तप्रवाह भी बन्द हो चुके थे ।

मेरे शरीर का सम्पूर्ण रक्त बदला गया तथा ऑपरेशन भी हुए । उसके ७२ घंटे बाद मुझे होश आया । बेहोशी में मुझे केवल इतना ही याद था कि मेरे भीतर पूज्य बापू द्वारा प्रदत्त गुरुमंत्र का जप चल रहा है । होश में आने पर डॉक्टरों ने पूछा :

''तुम ऑपरेशन के समय 'बापू... बापू...' पुकार रहे थे । ये 'बापू' कौन हैं ?''

मैंने बताया : ''वे मेरे गुरुदेव प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज हैं ।''

डॉक्टरों ने पुनः मुझसे प्रश्न किया : ''क्या तुम

कोई व्यायाम करते हो ?''

मैंने कहा : ''मैं अपने गुरुदेव द्वारा सिखलाई गई विधि से आसन व प्राणायाम करता हूँ ।''

वे बोले : ''इसीलिये तुम्हारे इस दुबले-पतले शरीर ने यह सब सहन कर लिया और तुम मरकर भी पुनः जिन्दा हो उठे । दूसरा कोई होता तो तुरन्त ही (on the spot) उसकी हड्डियाँ बाहर निकल जातीं और वह मर जाता ।''

मेरे शरीर में आठ-आठ नलियाँ लगी हुई थी । किसीसे खून चढ़ रहा था तो किसीसे कृत्रिम ऑक्सीजन दिया जा रहा था ।

मेरा दम घुट रहा था और मृत्यु की घड़ियाँ नजदीक दिखाई पड़ने लगी । अन्ततः वह स्थिति भी आ पहुँची जब डॉक्टरों ने मुझे मरणासन्न स्थिति में पहुँचा देखकर मृत घोषित कर दिया । मेरा मृत्यु प्रमाणपत्र (Death Certificate) बनाने की तैयारियाँ की जाने लगी व मेरे निर्जीव शरीर को घर ले जाने को कहा गया ।

यद्यपि मेरे शरीर के कुछ हिस्सों में अभी-भी काँच के टुकड़े मौजूद हैं लेकिन गुरुकृपा से आज मैं पूर्ण स्वस्थ होकर अपना व्यवसाय व गुरुसेवा दोनों कार्य कर रहा हूँ ।

मेरा जीवन तो गुरुदेव का ही दिया हुआ है । इन मन्त्रदृष्टा महर्षि ने उस दिन मेरे मित्र को मंत्र न दिया होता तो मेरा पुनर्जीवन तो सम्भव ही नहीं था। पूज्य बापू मानवदेह में दिखते हुए भी अति असाधारण महापुरुष हैं । टेलीफोन पर दिये हुए उनके एक मंत्र से ही मेरे मृत शरीर में पुनः प्राणों का संचार हो गया तो जिन पर प्रत्यक्ष बापू की निगाहें बरसती होगी वे लोग कितने भाग्यशाली होते होंगे !

ऐसे दयालु जीवनदाता सद्गुरु के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम...

- मनोज कुमार सोनी

ज्योति टेलर्स, लक्ष्मी बाजार, आमेट (राज.)

❀

'मुझे निर्व्यसनी बना दिया...'

मैं विगत बीस वर्षों से तम्बाकू का व्यसनी था और दिन भर तम्बाकू अथवा तम्बाकू का पान मुँह में भरे रखता था । कई बार तो नींद में भी तम्बाकू मुँह में भरी रहती थी । इस दुर्गुण को छोड़ने के लिये मैंने कितने ही प्रयत्न किये... शायद मेरी ही हालत पर ये पंक्तियाँ लिखी गई होगी कि :

हर बार कसम खाई कि पीना छोड़ दूँगा ।
हर बार कसम खाई कि बोतल फोड़ दूँगा ॥
लेकिन जब लगी होठों पर प्याली की लवरेस ।
तो हर बार कसम खाई कि कसम तोड़ दूँगा ॥

जनवरी ९५ में पूज्य बापू प्रकाशा पधारे तो पुण्योदय-वशात् मैं भी पूज्यश्री के दर्शनार्थ प्रकाशा आश्रम पहुँचा । ...लेकिन देखिये मेरा व्यसनप्रेम ! संतदर्शन के समय भी मेरे मुँह में तम्बाकू का पान दबा हुआ था ।

अन्तर्यामी बापू मुझे देखते ही ताड़ गये और बड़े प्रेम से पूछा : ''क्या आप तम्बाकू खा रहे हैं ?''

मैंने पूज्यश्री से अनुरोध किया : ''विगत ३२ वर्षों से मैं इसका सेवन कर रहा हूँ। अनेक प्रयत्नों के बाद भी इस दुर्गुण से मैं मुक्त न हो सका । अब आप ही कुछ कृपा कीजिये ।''

पूज्य बापू ने कहा : ''लाओ तम्बाकू की डिब्बी और तीन बार थूककर कहो कि 'आज से मैं तम्बाकू नहीं खाऊँगा।' मैंने पूज्य बापू के निर्देशानुसार किया और महान् आश्चर्य ! उसी दिन से मेरा तम्बाकू खाने का व्यसन छूट गया ।

मैं पहले तीन-चार दिन तक तम्बाकू छोड़ता और तलब लगने पर फिर से खाना शुरू कर देता लेकिन पूज्य बापू की ऐसी कृपादृष्टि हुई कि एक वर्ष होने पर भी मुझे कभी तम्बाकू खाने की तलब तक नहीं लगी ।

मैं किन शब्दों में पूज्य बापू का आभार व्यक्त करूँ ! मेरे पास शब्द ही नहीं हैं । मुझे गर्व है कि इन राष्ट्रसंत ने मेरा बरबाद व नष्ट होता जीवन बचाकर मुझे निर्व्यसनी बना दिया ।

- लखन भटवाल

जिलाध्यक्ष, भारतीय जनता पार्टी,
जिला-धुलिया (महाराष्ट्र)

संस्था समाचार

अकोला : महाराष्ट्र का यह औद्योगिक नगर दिनांक : ३० नवम्बर से ३ दिसम्बर १९९५ तक पूज्य बापू के पावन सान्निध्य में दिव्य सत्संग समारोह का लाभ लेकर धन्य-धन्य हो उठा । गिनती के गुरुभक्तों का दृढ़ संकल्प, तुरत-फुरत की तैयारी लेकिन सत्संग का आयोजन इतना विशाल हुआ कि स्टेशन रोड़ पर मौजूद आयोजन स्थल वसन्त देसाई स्टेडियम सुबह शाम सत्संगियों की भीड़ से भरा ही रहता था । यद्यपि इसी दौरान नगर में राज्य स्तरीय मल्ल-कुश्ती का आयोजन था तथापि आबालवृद्ध सभीने राष्ट्रसंत पूज्य बापू के सत्संगामृत की सरिता में अवगाहन कर अपना सौभाग्य बनाया ।

भुसावल : सूर्यपुत्री तापी के तट पर बसे इस नगर में दिनांक : ६ से १० दिसम्बर १९९५ तक एक अति विराट, भव्य व ऐतिहासिक आयोजन हुआ जिसमें उमड़ी लाखों की संख्या से युक्त जनमेदनी ने नगर में आयोजित समस्त धार्मिक, राजनैतिक व सामाजिक आयोजनों का रेकार्ड तोड़ दिया । यह आयोजन था विश्ववंदनीय जीवन्मुक्त संत प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री आसारामजी बापू के दिव्य सत्संग समारोह का । दिनांक : ६ दिसम्बर को पूर्णिमा होने से सारे भारत के पूर्णिमा व्रतधारी गुरुभक्त पूज्यश्री के दर्शनार्थ भुसावल पधारे । भुसावल में पूज्य बापू के सत्संग समारोह आयोजन से नगरवासियों में एक अजीब किस्म का उत्साह था । अनेकों घर मेहमानों की भीड़ से भरे थे वहीं नगर की अधिकांश धर्मशालाएँ भी सत्संगियों से भरी पड़ी थीं ।

मुम्बई : अंधेरी (वेस्ट) स्पोर्ट्स कॉम्प्लेक्स में पूज्य बापू की पावन निश्रा में दिनांक : १३ से १७ दिसम्बर तक दिव्य सत्संग समारोह का आयोजन हुआ । शोरगुल, व्यस्तता एवं विलासिता की नगरी मुम्बई... लेकिन पूज्य बापू के आगमन के समाचार सुनते ही लाखों लोगों ने इन अलख के औलिया की अमृतवर्षी वाणी का लाभ लिया । सत्संग समारोह के प्रथम दिवस ही महाराष्ट्र सरकार के प्रतिनिधि के रूप में उप मुख्यमंत्री श्री गोपीनाथ मुंडे पूज्यश्री के दर्शनार्थ एवं सत्संग-श्रवणार्थ मंडप में उपस्थित रहे । आपको अत्यावश्यक कार्यवश नागपुर जाना था लेकिन - **कोटिं त्यक्त्वा हरिं भजेत्...** 'करोड़ कार्य छोड़कर सत्संग व हरिभजन कर लो' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए आप प्रवचन-समाप्ति तक पांडाल में ही बैठे रहे । तत्पश्चात् पूज्यश्री के निवास-स्थान पर भी पूज्य बापू का सान्निध्य एवं स्नेहाशिष प्राप्त किया ।

मुम्बई के इस सत्संग समारोह में पूज्य बापू के दर्शनार्थ एवं सत्संग-श्रवणार्थ अनेक सिने अभिनेता, निर्माता, निर्देशक आदि भी आये तथा पूज्य बापू के पावन चरणकमलों में शत्रुघ्न सिन्हा ने आजीवन शाकाहारी बनने का संकल्प लेकर मांसभक्षण त्याग किया । आध्यात्मिक गुणों से सम्पन्न उनकी पत्नी श्रीमती पूनम सिन्हा ने अपने पति के मांसभक्षण त्यागने पर पूज्यश्री का हार्दिक आभार माना ।

वापी : दिनांक : १९ दिसम्बर १९९५ को वापी के नवनिर्मित आश्रम के उद्‌घाटन अवसर पर पूज्य बापू की अमृतवाणी का लाभ वापीवासियों को मिला । पूज्य बापू के सत्संग का समय ९ से ११ बजे तक था लेकिन मंडप में प्रातः छः बजे से ही सत्संगियों का आगमन शुरू हो गया था और सत्संग के समय तो इतनी भीड़ उमड़ पड़ी कि मंडप ही छोटा पड़ गया । फिर भी खुले आसमान के नीचे बैठकर भक्तजन ब्रह्मज्ञानी संत पूज्य बापू की पीयूषवाणी का रसपान करते रहे ।

वलसाड़ : १९ दिसम्बर को ही वापी से सूरत पधारते समय पूज्य बापू वलसाड़ में निर्मित संत श्री आसारामजी सत्संग भवन का उद्‌घाटन करने पधारे जहाँ भक्तों के अनुरोध पर प्राणीमात्र के हितैषी पूज्य बापू ने वलसाड़वासियों को भी अपनी अनुभवसम्पन्न योगवाणी का अमृत पिलाया ।

सूरत : दिनांक : २१ से २४ दिसम्बर तक आश्रम में आयोजित वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर में भारत के अनेक प्रान्तों के साथ साथ विदेशों से भी साधक पूज्य बापू के पावन सान्निध्य में ध्यान की गहराइयों

का एवं योग के सूक्ष्म रहस्यों का अनुभव करने आये । इस शिविर में पूज्यश्री की शक्तिपात-वर्षा से अनेकानेक जिज्ञासु अधिकारी साधकों में ईश्वरीय चेतना का प्रत्यक्ष संचार हुआ । शिविर की पूर्णाहुति के दौरान गुजरात राज्य के उप वित्तमंत्री श्री हेमन्त भाई चपटवाला सपत्नीक पूज्य बापू के दर्शनार्थ आये । अपने आतिथ्य उद्बोधन में आपने कहा :

''राजनीति का अर्थ समाज व राष्ट्र का नवनिर्माण एवं परिवर्तन करना है । यह भगीरथ कार्य राजनेताओं को मिलता है । राजाओं से भी ऊँचा स्थान महर्षियों का है । आज आवश्यकता है हिन्दू संस्कृति के रक्षण की, जिस पर अभी भी हजारों घाव हो रहे हैं । इसकी रक्षा पूज्य बापूजी जैसे महान संतों को ही करना है । इस देश को आप ही को बचाना है बापू ! हम अपनी पुरातन संस्कृति को बचा नहीं सके इसीलिये इस अखंड भारत के टुकड़े-टुकड़े हो गये । बापू ! हमें आशीर्वाद दीजिये कि आपके आशिष से हम सब मिलकर समाज में जागृति की लहर पैदा करें ।''

दिनांक : २४ दिसम्बर को राष्ट्रसंत पूज्य बापू के दर्शनार्थ पधारे प्रसिद्ध फिल्म निर्माता एवं टी-सीरिज के प्रमुख श्री गुलशन कुमार ने पूज्यश्री के सत्संग श्रवण करने के बाद कहा :

''जो सुख पूज्य बापू के चरणों में है, वह कहीं भी नहीं है । मन की जो शांति पूज्य बापू के श्रीचरणों में मिलती है वह शांति, पूरी दुनिया में घूम लीजिये चाहे हीरे जवाहरातों का ढेर इकट्ठा कर लीजिये... वह शांति अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी ।''

दिनांक : २५ से २७ दिसम्बर तक आयोजित विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर में यहाँ पूज्य बापू के सान्निध्य में भारतभर के हजारों विद्यार्थियों ने एवं शिक्षक बन्धुओं ने तन तन्दुरुस्त, मन प्रसन्न एवं बुद्धि में बुद्धिदाता का प्रकाश प्रकटाने एवं स्मरणशक्ति-विकास तथा सुसंस्कारवान बनने की विभिन्न योगिक, नीतिप्रद एवं आध्यात्मिक युक्तियाँ सीखी ।

❀

पू. बापू के अन्य सत्संग-कार्यक्रम

(१) आलंदी (जि. पूना) में ज्ञान-भक्ति सत्संग समारोह : दिनांक : ३० और ३१ दिसम्बर ।

(२) अहमदाबाद आश्रम में उत्तरायण का शिविर : दिनांक १२ से १५ जनवरी ९६. संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-५. संपर्क फोन : ७४८६३१०, ७४८६७०२.

(३) पानीपत (हरियाणा) में ज्ञानवर्षा : दिनांक : २३ से २८ जनवरी १९९६ सुबह ९ से ११ शाम ४ से ६. हुडा फेस-२, कम्यूनीटी सेन्टर के सामने । सम्पर्क फोन : २३६८०, ३००३४.

(४) कलकत्ता में गीता-भागवत सत्संग समारोह : दिनांक : ३ से ९ फरवरी १९९६. सुबह ९-३० से १२. दोपहर २ से ४. मोहन बागान ग्राउन्ड के पीछे । सम्पर्क फोन : २२०६६८९, २२०७६८२.

(५) सूरत आश्रम में होली शिविर : दिनांक : २ से ५ मार्च ९६. संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड़, जहाँगीरपुरा, सुरत । फोन : ६८५३४१.

❀ अन्तःकरण की एक धारा उठी, दूसरी उठने को है । इन दोनों के बीच की जो अवस्था है उसको जरा देखो, आपका बल बढ़ जाएगा । आपकी बुद्धि का विकास हो जाएगा । प्रज्ञा-शक्ति का प्राकट्य हो जाएगा । शरीर तन्दुरुस्त रहेगा ।

❀ सत्कृत्य को छुपा दो । वह और गति पकड़ेगा, जोर पकड़ेगा । दुष्कृत्य को प्रकट होने दो, वह मिट जाएगा । हम लोग क्या करते हैं ? सत्कार्यों को जाहिर करते हैं और दुष्कृत्यों को छुपाते हैं । भीतर हमारा खोखला हो जाता है । भीतर से काँपते रहते हैं ।

मुम्बई सत्संग समारोह में पूज्य बापू के श्रीचरणों में पूर्ण शाकाहारी बनने का व्रत ग्रहण करते प्रसिद्ध सिने अभिनेता शत्रुघ्नसिन्हा।

हर रविवार एवं गुरुवार को सूरत आश्रम में पादुका पूजन व पूज्य बापू के विडियो सत्संग का लाभ लेते सूरत जिला के साधक।

तन मन धन हम करें न्यौछावर
गुरुवर स्वागत आज है...
बापू आसाराम हमारी
रखनी तुमको लाज है...
(आगरा का विराट सत्संग)

शिवगंज-सुमेरपुर के साधक भक्तों की हरिनाम में झूमती टोली

पूज्य बापू के मधुर कीर्तन की मस्ती में झूमते हरिनाम के दीवाने (झाँसी सत्संग)।

औरंगाबाद (महा.) में जब विशाल मंडप भी छोटा पड़ गया तो हजारों साधक खुले मैदान में भी बैठकर पूज्य बापू की अमृतवाणी का लाभ लेते रहे।

REGISTERED WITH REGISTRAR OF NEWSPAPERS FOR INDIA UNDER NO. 48873/91 LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO

दीपक को, स्वस्तिक को अथवा ॐ को एकटक निहारे। गुरु की फोटो की ओर निहारते-निहारते, अहोभाव से भरते हुए जप करना अच्छा है ।

ध्यान में गुरु द्वारा बतायी गयी साधना की पद्धति से साधना करते-करते धीरे-धीरे शरीर में कुछ हिलचाल आदि होने लगेगी । उससे घबरायें नहीं । उसको सहयोग देना चाहिए। इस प्रकार नियमित ध्यान-भजन करें । कभी-कभी ज्यादा देर न हो जाये इसलिए संकल्प करके, गुरु से प्रार्थना करके ध्यान में बैठें, एक-दो घण्टा जितनी भी देर बैठना हो, तो ध्यान उतनी ही देर होगा ।

इस प्रकार साधना करते-करते साधक को दिव्य अनुभव होने लगेंगे। किसीको घंटनाद सुनाई देगा तो किसीको नाचने की इच्छा होगी । किन्तु जरूरी नहीं कि सबको एक-सा ही अनुभव हो। सबके अनुभव अपनी-अपनी योग्यता व संस्कारों के अनुसार होते हैं अत: इस विषय में अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए ।

कुछ समय बाद मन में आ सकता है कि मेरी साधना सही है कि गलत है ? किन्तु इस प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए । कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि आपके संकल्प फलने लगें । किन्तु इस बात पर भी विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए कि 'मैं जो सोचता हूँ वह हो जाता है ।' ऐसा करने से संकल्प-शक्ति बिखर जाती है । अगर कभी संकल्प सिद्ध न हुआ तो उत्साह और श्रद्धा टूट जाएगी और हो गया तो अहंकार और वासना बढ़ जायेगी । अत: परीक्षा के पचड़े में न पड़ें ।

कभी-कभी गुरु के पास अवश्य जाते रहें । और समय न भी जा सकें तो गुरुपूनम पर तो अवश्य जाना ही चाहिए । वर्षों तक व्रत-उपवास करने से भी जो लाभ नहीं होता है वह लाभ सद्गुरु के कुछ समय के संग से स्वत: ही हो जाता है ।

श्री वेदव्यासजी महाराज ने भागवत में बताया है कि अगर 'काम' को जीतना है तो शव को देखो, बीमार शरीर को देखो या तो जिस पर कामुक हो रहे हो उसके शरीर के चमड़े को मन ही मन हटाकर देखो कि भीतर क्या भरा है । 'लोभ' को जीतना है तो दान-पुण्य करो । 'अहंकार' को जीतना है तो जिस बात का अहंकार है जैसे धन का, सत्ता का, सौंदर्य का तो अपने से बड़े धनवान, सत्तावान और सौंदर्यवान को देखो और विचारो कि वे भी मर मिट गये । 'मोह' को जीतना है तो श्मशान में जाओ और देखो कि कई अर्थियाँ जल रही हैं । एक-एक करके सब परिवारवाले भी यहीं आयेंगे ।

इस प्रकार एक-एक दोष को ठीक करने के लिए महापुरुष वेदव्यासजी ने अलग-अलग उपाय बताये । किन्तु बाद में कह दिया कि यदि इन सब दोषों को एक साथ ही जीतना हो तो गुरु में भक्तिभाव कर दो : **एतत् सर्वं गुरोर्भक्त्या... एतत् सर्वं गुरोर्भक्त्या... एतत् सर्वं गुरोर्भक्त्या...।**

गुरुभक्ति ही समस्त विघ्नों को, समस्त विकारों को एक साथ नष्ट करने का सलामत उपाय है । समस्त विकारों के नष्ट होने पर परम शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मा का स्वत: प्राकट्य हो जाता है । कठिन नहीं है... हिम्मत करो... आगे बढ़ो... वहाँ तक नहीं भी पहुँचे तो जितना मिल गया वह तो अपने बाप का है ।

ॐ... ॐ... ॐ... ॐ...

❀

गुरुने गाँव जाकर देखा कि पैर के निशान तो बहुत बड़े हैं। पहले गुरु महाराज जोर से हँसे और फिर रोये ।

ध्यान में गुरु द्वारा बतायी गयी साधना की पद्धति से साधना करते-करते धीरे-धीरे शरीर में कुछ हिलचाल आदि होने लगेगी । उससे घबरायें नहीं। उसको सहयोग देना चाहिए। इस प्रकार नियमित ध्यान-भजन करें ।